# लोकप्रिय विज्ञान लेखन

## ( एक शास्त्रीय विवेचन )

डॉ० शिव गोपाल मिश्र

डॉ० दिनेश मणि

विज्ञान परिषद् प्रयाग

1998

लेखक : डॉ० शिव गोपाल मिश्र
डॉ० दिनेश मणि

प्रकाशक : विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद-2

प्रथम संस्करण : 1998

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक : द्वारा विजय प्रिन्टर्स, इलाहाबाद

# अनुक्रम

# भूमिका

वर्तमान युग विज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों की चरमोन्नति का काल है। एक तरह से वर्तमान मानव-सभ्यता पूर्ण रूप से विज्ञान पर निर्भर है। विज्ञान इस सभ्यता की मूल बुनियाद है और इसके अनुशीलन के बिना सभ्यता का विकास कल्पनातीत है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

वास्तव में देखा जाये तो मनुष्य की बाह्य जीवन-प्रणाली में दूर-दूर तक फैले हुये विभिन्न परिवर्तन किसी विशेष सामाजिक, राष्ट्रीय या राजनीतिक परिवर्तन के परिणाम नहीं हैं। विज्ञान की प्रगति और प्रयोग इन परिवर्तनों का प्राथमिक और मौलिक कारण है। बल्कि इन परिवर्तनों में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने के उद्देश्य से ही सामाजिक, राष्ट्रीय और राजनीतिक परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ी है। सभ्यता इन सभी प्रकार के परिवर्तनों का सम्मिलित परिणाम है। वैज्ञानिक प्रयोगजन्य परिवर्तित जीवन-प्रणाली तथा मानसिक दृष्टिकोण से सामंजस्य रखकर सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन लाने में जब भी विलम्ब हुआ अथवा कठिनाई हुई, तभी सभ्यता के संकट का आविर्भाव होता देखा गया है। वर्तमान सभ्यता भी इसी प्रकार के एक संकट का सामना कर रही है। समाज विज्ञान की अति द्रुतगति से कदम मिलाकर चलने में आज समर्थ नहीं है। राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था भी विज्ञान की इस तेज गति से तालमेल नहीं रख पा रही है।

इन्हीं सब कारणों से आज यह बात नये सिरे से बताने की आवश्यकता पड़ रही है कि वैज्ञानिक ज्ञान का व्यापक प्रसार करके ही देश का उद्धार किया जा सकता है। यदि इस ज्ञान का प्रसार करना हो तो भिन्न-भिन्न शास्त्रों की रूपरेखा ऐसी सुलभता से जनता के सामने रखी जाये कि साधारण से साधारण व्यक्ति भी समझ सके। ऐसा करते हुये यह बात ध्यान में रहे कि जनता को शास्त्रों में रोचकता भी मालूम हो तथा शास्त्रीय अचूकता भी बनी रहे। इस विधि से गहन से गहन विषय भी सरल बनकर जनता को आकर्षित करेंगे। इसी प्रकार साधारण जनता की दृष्टि में हितकारी वस्तुओं की उपयोगिता उनके उपयोग की विधि पर निर्भर है। अगर विधि सरल हो तो उपयोगिता अधिक समझी जाती है और उसका प्रचार भी अधिक होता है। नये आविष्कारों का यदि उपयोग न किया जाये तो अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धा में मनुष्य या देश पिछड़ जाता है, यह हमारे देश की परिस्थिति से स्पष्ट रूप से मालूम हो रहा है।

इस प्रकार यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यदि हम संसार में पिछड़े हुये नहीं रहना चाहते तो जिस वैज्ञानिक शिक्षा पर विकास अवलम्बित या आधारित है, उसकी हमें बहुत ही आवश्यकता है। इसी प्रकार हमें जब दूसरे शास्त्रपारंगत राष्ट्रों से स्पर्धा करनी है, उनसे बराबरी करनी है, तो हमें अपनी संस्कृति को भी उसी मार्ग से होकर हर प्रयत्न करके बढ़ाना होगा। आजकल की वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार सुदूर गाँवों तक होना चाहिये अन्यथा यदि सारे अनुसंधान प्रयोगशाला की चारदीवारी में कैद रहे तो भला विकास कैसे हो पावेगा?

उपर्युक्त कारणों से आज विज्ञान का अध्ययन और भी प्रासंगिक बन जाता है। बेकारी की समस्या को हल करने के लिये भी विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में विज्ञान के सहयोग से व्यवसायियों ने नयी विधियों का आविष्कार कर उद्योग-धन्धों में बड़ी उन्नति की है। यदि हम उद्योग-धन्धों में उनसे मुकाबला करना चाहते हैं तो हमें भी विज्ञान का सहारा लेना पड़ेगा। विज्ञान का सहारा लिए बिना रंग बनाने के, धातुओं के निर्माण के, मिट्टी के बर्तन बनाने के, सूती व रेशमी वस्त्रों के प्रस्तुत करने के औषधियों के निर्माण के, परिवहन के साधनों के और यहाँ तक कि युद्ध सामग्रियों के, निर्माण के धन्धों में हम उनसे बराबरी नहीं कर सकते।

स्मरण रहे कि विज्ञान का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये देशी भाषाओं का माध्यम अति आवश्यक है। जिस प्रकार माँ के दूध के समान पुष्टिकर और शीघ्र पचकर शक्ति उत्पन्न करने वाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं है उसी प्रकार जो ज्ञान मातृ-भाषा के द्वारा प्राप्त होता है वही सच्चा और वास्तविक होता है और उसी से लाभ उठाया जा सकता है।

वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार में शिक्षक, शिष्य और आवश्यक ग्रन्थ या पुस्तकें ये तीनों परस्पर सहायक होने चाहिये। इन तीनों में से किसी एक में भी न्यूनता होने पर उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकेगी।

प्राय: ऐसा समझा जाता है कि लोकप्रिय विज्ञान-पुस्तकों का लेखन आसान है किन्तु ऐसा है नहीं। अक्सर यह देखा गया है कि जो भाषा-प्रवीण होते हैं उनको बहुधा वैज्ञानिक विषयों में अरुचि होती है और जो वैज्ञानिक विषय में पारंगत हैं, उनकी निज भाषा कमजोर होती है। यह अजीब बात है किन्तु इसे सुलझाने का उपाय यह है कि भाषा-कोविद और वैज्ञानिक मिलकर काम करें क्योंकि यदि ये दोनों अंधे और पंगु की तरह सहयोग भावना से कार्य करेंगे तो विभिन्न स्तर की लोकप्रिय पुस्तकें सरलता से तैयार हो सकेंगी।

विज्ञान-लेखन सामान्य कथा-कहानी या उपन्यास-लेखन जैसा नहीं होता। सामान्य रचनाएँ प्राय: मनोरंजन की दृष्टि से लिखी जाती हैं। उनमें व्यक्ति, काल, स्थान आदि काल्पनिक हुआ करते हैं। किन्तु विज्ञान-लेखक तो सत्य का अनन्य पुजारी होता है। उसे तो तथ्यों की तलवार की धार पर ही चलना होता है, कहीं रंचमात्र भी हेर-फेर की गुंजाइश नहीं रहती। यदि कोई लेखक भूल से, अज्ञान से या जल्दबाजी में ही सही, गति संबंधी सिद्धान्तों के प्रयोक्ता का नाम '**न्यूटन**' के बजाय **डाल्टन** (या **मिल्टन** या कुछ और ही) लिख जाए तो उसकी सारी रचना तो रद्दी की टोकरी में जाने योग्य होगी ही, वह स्वयं भी अपराधी की कोटि में आ सकता है। इसलिए जिसको विज्ञान के छोटे बड़े सभी संबंधित तथ्यों की पूरी-पूरी और सही जानकारी होगी, वही विज्ञान-साहित्य लिखने का साहस कर सकता है और इस अग्नि-परीक्षा में खरा उतर सकता है। अधकचरे ज्ञान से यहाँ काम नहीं चलता।

अभी तक लोकप्रियकरण/लोकप्रिय लेखन पर कोई शास्त्रीय विवचेन नहीं हुआ। प्रस्तुत पुस्तक में इस पर खुलकर चर्चा की गई है जिससे लोकप्रिय साहित्य के लेखन को गति प्रदान की जा सके।

15 अगस्त, 1998 — **शिव गोपाल मिश्र**

इलाहाबाद — **दिनेश मणि**

# अध्याय 1
# लोकप्रिय विज्ञान लेखन क्या है ?

**लोकप्रिय विज्ञान** अंग्रेजी के Popular Science का पर्याय है। हिन्दी में इसके अन्य समानार्थी शब्द हैं लोकोपयोगी विज्ञान, सरल या सुगम विज्ञान, सर्वसुलभ विज्ञान, जनोपयोगी विज्ञान, लोकसुलभ विज्ञान, लोकगम्य विज्ञान, सुबोध विज्ञान।

ऐसा विज्ञान जो जन-सामान्य के ज्ञानवर्धन हेतु रोचक ढंग से लिखा, कहा या प्रदर्शित किया जाय जिससे कि सैद्धान्तिक पक्षों में उलझे बिना वैज्ञानक तथ्यों की जानकारी हो सके, वह **लोकप्रिय विज्ञान** या **लोकोपयोगी विज्ञान** है। उदाहरणार्थ, एक सामान्य वृक्ष को हम सभी देखते हैं, उसके बारे में कुछ फुटकर बातें भी जानते हैं किन्तु जब वृक्ष को 'ऑक्सीजन का स्रोत' या 'हरित फेफड़ा' जैसी संज्ञाएँ प्रदान की जाती हैं तो प्रकारान्तर से प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से ऑक्सीजन के उन्मोचन एवं प्राणियों द्वारा श्वास लेने में उसके प्रयुक्त होने तथा हरित पदार्थ के निर्माण जैसे तथ्यों को उजागर किया जाता है।

दूसरा उदाहरण सूर्य का लिया जा सकता है। सामान्य जनता सूर्य को देवता मानकर उसकी पूजा करती है किन्तु जब उसी सूर्य को ऊर्जा या सौरशक्ति के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो वही लोकप्रिय विज्ञान का विषय बन जाता है।

लोकप्रिय विज्ञान का सरोकार ऐसे ही क्षेत्रों से है। इसमें सत्य को उद्घाटित करने का प्रयास रहता है। इसके लिए यत्र-तत्र कल्पना का भी सहारा लिया जाता है। उदाहरणार्थ, विज्ञान कथाओं में सत्य और कल्पना की आँखमिचौनी रहती है।

वैज्ञानिक तथ्यों को हृदयंगम करके लोक में प्रचलित अन्ध विश्वासों या रुढ़ियों का ध्वस्त करने तथा नई जानकारी को व्यावहारिक रूप प्रदान करना लोकप्रिय विज्ञान का अभीष्ठ रहता है। इसकी कसौटी इसकी वैज्ञानिक आधार भूमि है और इसका लक्ष्य है जन-जन तक इसका प्रसार।

**लेखन** का अर्थ है चमत्कृत शैली में किसी ज्ञान को इस तरह प्रस्तुत करना जिसमें भाषा का प्रवाह हो, विषयवस्तु में पूर्वापर का पालन हो, जो प्रामाणिक तथ्यों पर आधारित हो और पाठकों की जिज्ञासाओं का शमन करने वाला हो।

लोकप्रिय विज्ञान की समृद्धि का और उसे साहित्य का दर्जा दिलाने का मानदण्ड यही है कि वह उपर्युक्त शर्तों का पूरक हो और इसका संकेत देता हो कि विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में भी उसी स्तर का साहित्य उपलब्ध कराया जा रहा है, उसमें निरन्तर परिष्कार हो रहा है, उसकी समीक्षा हो रही है और सबसे आवश्यक बात यह है कि यह जन-जन तक पहुँच रहा है।

विज्ञान समय के साथ जिस तेजी से प्रगति करता है उससे बहुत सा प्राचीन साहित्य पुराना (Out dated) पड़ता जाता है अत: वह वर्तमान में उपयोगी नहीं रह जाता। इसलिए लोकप्रिय विज्ञान के सतत लेखन की आवश्यकता बनी रहती है और नये लेखकों को अवसर मिलता है। सच्चा लोकप्रिय विज्ञान लेखक वही है जो बहुजनहिताय बहुजनसुखाय सोचे और लिखे। इसीसे वह साहित्य में अमर रह सकेगा। लेखक का दायित्व गुरुतर होता है। उसकी दृष्टि जितनी दूरगामी होगी उतना ही अधिक समाज का कल्याण होगा। उसका कार्य कठिन इसलिए है कि उसे जनरुचि एवं विज्ञान की प्रगति में तालमेल बैठा कर लेखन करना होता है। लोकप्रिय विज्ञान लेखन कोई मुख का कौर नहीं। यह तपस्या है जिसमें बिरले ही सिद्ध हो पाते है।

लोकप्रिय विज्ञान लेखन का मूल उद्देश्य लोगों की रुचि को परिष्कृत करके उनमें सत्य को जानने एवं समझने की दृष्टि का विस्तार करना एवं उनमें प्रकृति को समझने की शक्ति विकसित करके उन्हें अंधविश्वासों से मुक्त करना है। आज जरूरत इस बात की है कि आम आदमी अपनी इच्छायें / आकांक्षायें वैज्ञानिकों तक पहुँचाये तथा वैज्ञानिक आम आदमी की आशंकाओं का सुस्पष्ट समाधान प्रस्तुत करें।

चूँकि हमारे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग विज्ञान एवं तकनीकी विषयों को समझने के लिये हिन्दी में प्रकाशित विज्ञान रचनाओं पर आश्रित है अत: ऐसी दशा में हिन्दी के लोकप्रिय विज्ञान लेखकों के लिये अपने इस दायित्व को समझना और भी आवश्यक है। यदि हम अपने समाज को विज्ञान रचनाओं के नाम पर विदेशी भाषाओं में मात्र मनोरंजनार्थ लिखी गई रचनाओं के मनचाहे अनुवाद को पढ़ाते रहेंगे तो समाज कभी भी समय की जरूरत के अनुरूप नहीं ढल सकेगा। एक विकासशील समाज की समस्यायें एवं आवश्यकतायें एक विकसित समाज की समस्याओं एवं आवश्यकताओं से भिन्न होती हैं और इन समस्याओं से जूझने तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उसको वही ज्ञान देना आवश्यक है जिसे वह अपने जीवन में प्रयुक्त कर सके।

हम कह सकते हैं कि विज्ञान अभी तक अंग्रेजी पढ़े-लिखे वैज्ञानिकों के चंगुल में फँसा है। आम राय यही है कि वैज्ञानिकों ने विज्ञान को बेहद कठिन

एवं गूढ़ दर्शाने की कोशिश की है। यह शायद उन्होंने अपने स्वार्थ के लिये किया है क्योंकि गूढ़ बातें करने से लोग जल्दी प्रभावित हो जाते हैं। हमारा विश्वास है कि आम आदमी की भाषा में विज्ञान लेखन होने से विज्ञान के बारे में बनी गलत धारणा समाप्त हो जायेगी। विज्ञान तर्क पर आधारित परिष्कृत ज्ञान है। विज्ञान सोचने की एक पद्धति है। क्या, क्यों और कैसे प्रश्नों के आधार पर निरीक्षण, अध्ययन व विश्लेषण करके प्राप्त निष्कर्ष पर विश्वास करना होता है।

समाज में विज्ञान कोई बाहर से लाने की वस्तु नहीं है, बल्कि विज्ञान समाज में चारों ओर बिखरा पड़ा है—भोजन में विज्ञान, पानी में विज्ञान, कृषि में विज्ञान, पर्यावरण में विज्ञान आदि-आदि। कहने का आशय यह है कि जीवन में कदम-कदम पर विज्ञान है, प्रत्येक चीज के प्रत्येक पहलू में विज्ञान है। प्रत्येक चीज को जाँच-परख कर तथा उसके आधार पर परिणाम प्राप्त करके पूरी तरह समझने के बाद सिद्धान्त प्रतिपादित करना ही विज्ञान है। और जो साहित्य आम लोगों को इस प्रक्रिया की ओर बढ़ने की प्रेरणा दे, उनमें ऐसा दृष्टिकोण विकसित करे या फिर यूँ कहिये कि जिस साहित्य को पढ़ने, सुनने या देखने से व्यक्ति में विभिन्न वस्तुओं, व स्थितियों के प्रति जिज्ञासा, रुचि, अवलोकन करने की आदत, सोचने और कल्पना करने की शक्ति तथा तर्क व प्रयोगों के आधार पर किसी चीज की जाँचने-परखने की क्षमता उत्पन्न हो तो वही विज्ञान-साहित्य होगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि ऐसा वातावरण तैयार हो जिसमें विज्ञान साहित्यकार विज्ञान साहित्य का सृजन करने की ओर प्रवृत्त हो। साहित्य की प्रत्येक विधा-कविता, कहानी, नाटक, लेख, फीचर, समाचार आदि सभी में विज्ञान का समावेश हो।

यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि विज्ञान-साहित्य के सृजन में मनचाहे शब्दों का उपयोग नहीं करना चाहिये। आज जब हिन्दी में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, दिल्ली से वैज्ञानिक विषयों के मानक शब्दकोश तथा पारिभाषिक शब्दावली प्रकाशित हो चुकी है और उपलब्ध है तो फिर मनचाहे शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाये? भाषा का निर्माण स्वयं में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है और इसमें जरा सी लापरवाही अर्थ का अनर्थ कर सकती है। जहाँ तक विज्ञान का प्रश्न है, वह स्वयं में एक अनुशासित विषय है और इसकी शब्दावली में भी उतना ही अनुशासन अपेक्षित है। यही कारण है कि इसमें (वैज्ञानिक सिद्धान्तों एवं परिकल्पनाओं में) शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों एक ही होते हैं।

आज स्थिति यह है कि आम जीवन से जुड़े विषयों के वैज्ञानिक पहलुओं पर न के बराबर ही साहित्य सृजन हो रहा है जबकि कुछ सामान्य विषयों पर सृजन की बाढ़ सी आयी हुई है। इस प्रकार साहित्य में एक असंतुलन सा बना हुआ है। इस असंतुलन को दूर करने व साहित्य में विज्ञान को उचित स्थान देने के लिये सुनियोजित प्रयासों की आवश्यकता है। आज के साहित्यकारों व विभिन्न वैज्ञानिक विषयों के विशेषज्ञों को साथ मिलकर प्रयास करने होंगे। तभी साहित्य में अन्य परम्पराओं के समान ही विज्ञान साहित्य की भी परम्परा स्थापित होगी।

विज्ञान की अपनी भाषा होती है। इस भाषा के माध्यम से वैज्ञानिक तथ्यों तथा गूढ़ रहस्यों को विभिन्न तकनीकी शब्दों के सहारे व्यक्त करता है। किन्तु इसे ग्राह्य भाषा के रूप में रूपान्तरित करने या अनुवाद करने में अनेक कठिनाइयाँ होती हैं। मूल भाषा से अनुवाद करने में सबसे बड़ी बाधा उस मूल भाषा की विशिष्ट शैली होती है। उस शैली के सरलीकरण में तकनीकी शब्दों की भरमार के कारण अधिक वाक्य बनाने पड़ते हैं या नये शब्दों को गढ़कर उसके भाव को स्पष्ट करना पड़ता है। ऐसे में कहीं-कहीं उपयुक्त शब्द न मिलने से कठिनाई होती है। अनुवाद में मूल शैली का रूपान्तरण अत्यन्त दुष्कर है। इसका कारण यह है कि इसके लिये अनुवादक को लेखक का मन्तव्य केवल आत्मसात् ही नहीं करना पड़ता वरन् अपनी कुशल लेखनी द्वारा मूल शैलीगत विशेषताओं को भी रूपान्तरित करना होता है। योग्य अनुवादक में मूल लेखक की शैलीगत विशेषताओं को समझ लेने की पूरी क्षमता होनी चाहिये। उसे लेखक की शैली से पूर्णत: अवगत होने के बाद ही अनुवाद का कार्य आरम्भ करना चाहिये। उसे बहुभाषाविद होना चाहिए।

मूल प्रश्न है 'लिखने के लिए लिखा' जाय कि 'पढ़ने के लिए लिखा' जाय? स्पष्ट है कि लिखने के पूर्व उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। जिससे अर्थलाभ के साथ ही साहित्य की उन्नति होती चले, वही वास्तविक लेखन है। इस कथन में यश-अर्जन निहित है। यश में लेखक की शैली, भाव, विषयवस्तु—क्या नहीं छिपा होगा!

'लिखने के लिये लिखना' का दूसरा अर्थ होगा जो सभी लिख रहे हैं वही लिखना। नि:सन्देह ऐसा लेखन मौलिक नहीं वरन् अनुकरणात्मक (कहना चाहें तो व्यावसायिक भी कह सकते हैं) कहलावेगा। वास्तव में लिखा वह जाना है जो लिखा नहीं गया या लिखा भी गया है तो उसको हृदयंगम करते हुए कुछ नए ढंग से लिखा जाना। लिखने के पूर्व पढ़ना होगा। पढ़ने से भूतकाल से आप जुड़ेंगे; पुराने लेखकों को पहचानेंगे। लिखते हुए निरन्तर इसका भी ध्यान रहे कि 'क्या नहीं लिखना चाहिए'। ऐसा करने में हमारा संकेत विषयवस्तु

के चुनाव की ओर है। सामयिक लेखन प्रगति का सूचक है, उसकी माँग भी होती है।

आज आवश्यकता है प्रयोगशालाओं में जो कुछ हो रहा है उसे जनसाधारण के समक्ष लाया जाय। लेकिन क्या ऐसा कर पाना कोई आसान काम है!

जो भी पढ़ते समय अच्छा लगे और जिसके बारे में आप समझें कि यह सामग्री या ज्ञान हमारे साहित्य में नहीं है उसे आप अवश्य अवतरित करें—इसके लिये अनुवाद करना पड़े तो अनुवाद भी करें। लेकिन जनसामान्य के हित में होने के कारण इसे लिखें अवश्य। लेखक का यही दायित्व है।

याद रहे, अनुवाद भी लेखन है। आज इसकी नितान्त आवश्यकता है। विदेशों में जो भी वैज्ञानिक शोधें हो रही हैं और जितने भी वैज्ञानिक प्रकाशन हो रहे हैं उनको हिन्दी में लाने के लिये अनुवाद की आवश्यकता है और सदैव बनी रहेगी। केवल अंग्रेजी का ही नहीं, फ्रेंच , जर्मन, रूसी तथा जापानी भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद होते रहना चाहिए। इस दृष्टि से हिन्दी के विज्ञान लेखकों की तैयारी अधूरी है। अंग्रेजी के अनुवाद को लेकर हो-हल्ला मचा रहता है। वस्तुत: अभी तक जितना भी वैज्ञानिक साहित्य रचा गया है वह अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण पर आधारित है। स्पष्ट है कि कभी भी हिन्दी अपने को इतनी समर्थ नहीं घोषित कर सकती कि अंग्रेजी के बिना काम चला ले।

किन्तु सम्पादन लेखन नहीं, भले ही वह कितना ही उत्कृष्ट क्यों न हो। दूसरों की कृतियों में संशोधन या अपनी रुचि की सामग्री का दूसरों के द्वारा लिखा जाना लेखन को प्रोत्साहन देता है और भाषा-शैली में परिष्कार लाता है किन्तु वह किसी की सर्जकता का मापदण्ड नहीं बन सकता। कई बार व्यवसायिकता के फेर में सम्पादन से लाभ के बजाय हानि पहुँच सकती है।

'फ्री लांसिंग' कितना लेखन है और कितना 'अनुकूलन' यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता किन्तु इससे अनेक बार अत्यन्त लाभप्रद सामग्री प्रकाश में आती है। जीविका के रूप में लेखन कभी भी उतना उपकारी नहीं हो सकता जितना विशिष्टताप्राप्त अन्य साधनों पर आश्रित अधिकारियों द्वारा किया जाने वाला लेखनकार्य सिद्ध हो सकता है।

विज्ञान लेखकों को चाहिये कि वे दक्षताप्राप्त विषयों पर ही अपनी लेखनी चलायें। जो भी इस सीमा का अतिक्रमण करता है उसका लेखन घोषित करता रहता है कि अमुक कृति ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है जिसे विषय का ज्ञान नहीं। जीविका साधन के लिये ऐसा करना पड़े तो हमें कुछ नहीं कहना, अन्यथा इससे बचना चाहिए। जो हमारा दाय है, जो हमारे पास देने को है उसे ही

और उतना ही दें। जितना समय किसी अज्ञात विषय के अभ्यास में नष्ट किया जाता है उससे कम समय में ज्ञात विषयक नवीन सामग्री दी जा सकती है।

विज्ञान लेखन का कार्य जनता को डराना नहीं—उसमें विश्वास उत्पन्न करना है, उसे आश्वस्त करना है। उसे ठगना नहीं, उसे लाभ पहुँचाना है। कभी भी चौकाने वाले समाचारों को वरीयता न दें। जो सत्य है, उसे ही अधिष्ठापित करें। ध्यानाकर्षण से अधिक आवश्यक है स्थायी विचारवल्लरी का पल्लवन। जो भी लिखा जाय, महान् उद्देश्य की पूर्ति स्वरूप हो। अनुकरण या पिष्टपेषण से बचें। एकाध स्फुट निबन्ध लिखने की अपेक्षा लेखमालाओं को वरीयता दें।

लेखन का उद्देश्य समाचार या ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होता। भाषा अथवा शैली सुधार या परिष्कार की दिशा में यह उपयोगी कदम होता है। जितना ही लिखा जावेगा उतना ही निखार आवेगा। कभी भी अच्छा लेखक एक रात में या एक ही पृष्ठ लिखकर नहीं बनता। अनवरत अभ्यास की आवश्यकता सबों को पड़ती है।

लेखन जब विद्यार्थियों की सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति को लक्षित करके किया जाता है तो पाठ्य पुस्तकें तैयार होती हैं। जब शोधों पर आधारित करके सब कुछ लिखा जाता है तो शोध ग्रंथ या मोनोग्राफ लिखे जाते हैं। कभी भी इन दो प्रकार के लेखनों में समता नहीं लाई जा सकती। कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि पहले प्रकार के लेखन के बाद ही दूसरे प्रकार के लेखन को बल मिलता है।

जीवनी लेखन, शिकार कथा या गल्प को क्या कहा जाय? यदि जीवनी लेखन में केवल तिथियों या कार्य-कलापों की सूची बनानी हो तो ऐसी जीवनी से न लिखना ही श्रेयस्कर होगा। सामान्य से सामान्य व्यक्ति की जीवनी प्रेरणा प्रदान करने वाली हो सकती है किन्तु लेखन के पूर्व चरितनायक का सान्निध्य प्राप्त करना आवश्यक है। यदि विश्वकोशों से अथवा 'वार्षिकी' प्रकाशनों से पढ़ कर जीवनी लिखनी हो, तो अच्छा होगा कि जीवनी न लिखी जाय। शिकार कथा में मात्र रोमांच लाने के लिए कल्पित मुठभेड़ों का अंकन कभी भी लाभप्रद नहीं हो सकता। 'विचित्र पक्षी' या 'विचित्र जीव' जैसे ग्रन्थों का लेखन आसान है किन्तु उसमें आपका क्या योगदान है? बिना अनुभव के कुछ भी लिखना कुरुचि उत्पन्न करना होगा।

जो कुछ लिखा गया है उसकी समालोचना करते चलना बुद्धिमानी की बात होगी। इससे बरसाती लेखकों पर अंकुश लगता रहता है। ऐसा अंकुश आवश्यक भी है। विज्ञान जगत में बड़े-बड़े लेखक (या यों कहें कि विशेषज्ञ)

छोटों की लेखनी की गतिविधियों की परवाह नहीं करते। छोटा लेखक बड़े लेखक की प्रशंसा करेगा या फिर दोष निकालेगा किन्तु बड़ा लेखक हाथी की चाल चलता चलेगा। इससे अहित होता है।

विज्ञान की भाषा गद्य है। गद्य की प्रौढ़ता विज्ञान लेखन से ही जानी जा सकती है। लेखन की प्रौढ़ता की कसौटी निबन्ध लेखन है और वह भी दार्शनिक या वैचारिक निबन्धों का लेखन। हिन्दी में बर्ट्रेण्ड रसेल, जेम्स जीन्स जैसे कितने विचारवान लेखक हैं? आइये, प्रयत्न करें कि हिन्दी में विज्ञान का लेखन बहुआयामी बने जिससे सभी विधाओं (शैलियों) को विकसित होने का अवसर प्राप्त हो। किन्तु रेडियो, टेलीविजन या किसान मेलों के लिए भी लोकप्रिय विज्ञान के लिखे जाने की आवश्यकता है। इनमें व्यावहारिक बातों को सरलतम ढंग से समझाने का प्रयास रहता है। भाषा तथा विचारों में वह कसाव नहीं होता जो लोकप्रिय पुस्तकों में हो सकता है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि वैज्ञानिकों तथा साहित्यकारों दोनों वर्गों के लोगों को साथ मिलकर लोकप्रिय विज्ञान साहित्य सृजन की समभावनाओं एवं आवश्यकताओं का पता लगाकर कार्य प्रारम्भ किया जाना चाहिये न कि बिना किसी रूपरेखा के छिट-पुट टिप्पणियाँ लिखकर। हमें अपनी मातृभाषा पर गर्व होना चाहिये और केवल विदेशी भाषा में दक्षता ही को हमें अपनी प्रगति का मापदण्ड नहीं बनाना चाहिये।

## अध्याय 2
# लोकप्रिय विज्ञान की भाषा

किसी भी भाषा से जब सरलता की माँग की जाती है तो वह अकारण नहीं है—सरलता उसका दायित्व है और सहज गुण बन जाना चाहिये। किन्तु सरलता का क्या अर्थ है—वे कौन-कौन से तत्व हैं जिनसे सरलता का निर्माण होता है, यह निर्णय करना सरल नहीं है। 'सरल' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'सिम्पुल' शब्द के पर्याय के रूप में होता है और चूँकि हिन्दी की सरलता के लिये अधिकतर वे ही लोग व्यग्र हैं जो अंग्रेजी में सोचने-समझने के अभ्यस्त हैं इसलिये सरलता का स्वरूप-विश्लेषण करने के लिये अंग्रेजी के 'सिम्पुल' शब्द का आँचल पकड़े रहना जरूरी होगा। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'सिम्पुल' शब्द के चार मुख्य अर्थ हैं—

(1) अमिश्र—जिसकी रचना केवल एक ही तत्व से हुई हो, अखण्ड

(2) जो उलझा हुआ या जटिल या अंलकृत न हो—उदाहरणार्थ, अमुक लेखक की शैली सरल और निराभरण है।

(3) निरपेक्ष और

(4) सीधा-सादा , अकृत्रिम, सहज, निश्छल

उपर्युक्त अर्थों में से कुछ ही ऐसे हैं जो भाषा के प्रयोग में सार्थक होते हैं :—जैसे सीधा-सादा, सहज, अकृत्रिम, उलझाव और जटिलता से मुक्त, और निराभरणा। इनके अनुसार सरल भाषा वह है—

(1) जो स्वाभाविक हो

(2) जिसकी वाक्य रचना सीधी और सुलझी हुई हो, जिसमें किसी प्रकार की जटिलता और उलझन न हो, अर्थात् वाक्य छोटे और सीधे हों, उनमें किसी प्रकार का घुमाव और पेंच न हो।

(3) जिसमें किसी प्रकार का आडम्बर, अलंकार और वक्र प्रयोग न हो।

(4) जो अभीष्ट अर्थ को मन की बात को ठीक-ठीक और बिना छल-छद्म के व्यक्त करे।

**1. स्वाभाविकता**—स्वाभाविकता का अथ है अपनी प्रकृति के अनुकूल होना। अतः भाषा की स्वाभाविकता से तात्पर्य है अपने मूल प्रसंग और अर्थ

की अनुकूलता। यदि मूल अर्थ जटिल है अर्थात् उसमें अनेक अर्थ-छायाओं का मिश्रण है तो जबरदस्ती सरल और छोटे वाक्यों का प्रयोग भाषा को प्रसंग तथा मूल अर्थ के प्रतिकूल और परिणामत: अस्वाभाविक बना देगा।

**2. जटिलता का अभाव**—इसमें सन्देह नहीं कि जटिलता भाषा का दुर्गुण है, किन्तु जटिलता के दो रूप हैं—एक आंतरिक और दूसरा बाह्य। आन्तरिक जटिलता से अभिप्राय है अर्थ की जटिलता अर्थात् चिन्तन की जटिलता। जहाँ चिन्तन गति ऋजु न होकर जटिल और वक्र है वहाँ भाषा जटिलता से मुक्त नहीं हो सकती और यदि उसे सरल करने का बरबस प्रयत्न किया जायेगा तो वह सही अर्थ को व्यक्त नहीं कर सकेगी। यहाँ मूल दोष चिन्तन का है। भाषा की जटिलता तो विचार की जटिलता की छाया है और विचार की छाया होना भाषा का स्वधर्म और पातिव्रत है। बाह्य जटिलता का सम्बन्ध वाक्य रचना आदि से है, अनभ्यस्त या अयोग्य लेखक अशुद्ध शब्द प्रयोग, वाक्यांशों के अनुपयुक्त नियोजन आदि के द्वारा वाक्य रचना को उलझा देते हैं जिससे अर्थ व्यक्ति बाधित हो जाती है। यह दोष अनभ्यास और अयोग्यताजन्य है और इसका परिहार कठिन नहीं है।

**3. आडम्बर और अलंकार से मुक्ति**—सरल भाषा का एक गुण है आडम्बर और अलंकार से मुक्ति। यहाँ आडम्बर शब्द के विषय में तो कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती। वह प्रत्येक स्थिति में दोष है और भाषा भी इसका अपवाद नहीं। जिस प्रकार हीनताग्रस्त व्यक्ति व्यवहार और रहन-सहन में आडम्बर का समावेश कर अपने अभाव को छिपाने की व्यर्थ चेष्टा करते हुये समाज में निन्दा के भागी बनते हैं उसी प्रकार अयोग्य लेखक भी भाषा को आडम्बरपूर्ण बनाकर साहित्य में निन्दनीय बन जाते हैं। किन्तु अलंकार भाषा का दोष न होकर गुण है—अलंकार-मोह या कृत्रिम अलंकार या अनुपयुक्त अलंकार ही भाषा का दोष हो सकता है। अलंकार जहाँ सहजात होता है वहाँ तो वह भाषा का अनिवार्य गुण बन जाता है—उससे सरलता बाधित नहीं होती।

**4. सही अभिव्यक्ति**—अभीष्ट अर्थ की यथावत् अभिव्यक्ति सरल भाषा का अन्तिम और अनिवार्य कारण है जिस प्रकार निश्छल हुये बिना व्यक्तित्व की सरलता असम्भव है उसी प्रकार अर्थ की निश्छल अभिव्यक्ति के बिना भाषा सरल नहीं बन सकती। अर्थ यदि अमिश्र है तो भाषा की सरलता अमिश्र वाक्य प्रयोग आदि में निहित होगी, परन्तु यदि अर्थ में ही जटिलता है तो मिश्र वाक्य प्रयोग और व्यंजक पर्यायों के बिना अर्थ व्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती और जहाँ अर्थ-व्यक्ति ही नहीं है वहाँ सरलता कैसी?

शब्दावली और वाक्य रचना का भाषा की सरलता के साथ सम्बन्ध है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु यह सम्बन्ध अनिवार्य नहीं है अर्थात् किसी विशेष

प्रकार की शब्दावली तथा वाक्य रचना भाषा को सरल बनाती है—ऐसा नियम नहीं बनाया जा सकता। संस्कृत के तत्सम शब्दों से भाषा कठिन बन जाती है और बोलचाल के शब्दों से सरल अथवा लम्बे वाक्यों का प्रयोग भाषा को दुरूह और छोटे वाक्यों का प्रयोग उसे सरल बनाता है। यह कोई अकारण विधान नहीं है। कभी-कभी बोलचाल के शब्दों से मतलब एकदम सख्त हो जाता है और छोटे-छोटे वाक्य अर्थ को खण्ड-खण्ड कर बुरी तरह उलझा देते हैं।

**विज्ञान की भाषा** को ज्ञान विशेष या वर्ग विशेष (विज्ञानियों) की भाषा कहा जा सकता है। जिस तरह भाषा की आवश्यकता विचारों की अभिव्यक्ति के लिए हुई उसी तरह विज्ञान की भाषा का जन्म विज्ञान के विविध तथ्यों को यथातथ्य रूप में अधिकाधिक सत्य के निकट लाने के प्रयास स्वरूप हुआ—यह वैज्ञानिक तथ्यों के आदान-प्रदान के लिए आवश्यक शर्त सी बन गई। स्पष्ट है कि आमफहम या सामान्य भाषा से यह सर्वथा भिन्न, नितान्त पारिभाषिक,चाहें तो कह सकते हैं नितान्त कृत्रिम भाषा है। यह सार्वभौमिकता को अपना लक्ष्य बनाती है, संकुचित सीमा को नहीं। कहना चाहें तो कह सकते हैं कि यह **विश्व** भाषा है।

विज्ञान तथ्यों पर अवलम्बित है अतएव विज्ञान की भाषा का एकमात्र उद्देश्य सूचना देना है जबकि ललित साहित्य में भाषा का उपयोग भावनाओं को उभाड़ने के लिए किया जाता है। लेकिन तथ्य (fact) तथा ललित कल्पना या कल्पना विलास (fantasy) में सर्वथा विलगाव नहीं है। ऐसा नहीं है कि विज्ञानी तथ्यों की तलाश करते हुए कल्पना विलास के क्षेत्र में प्रवेश न करता हो। हाँ एक सीमित मात्रा में ऐसा करता है। रदरफोर्ड ने लिखा है—

"भलीभाँति बनाया गया सिद्धान्त कुछ मामलों में कलात्मक सृजन है । आइंस्टीन का सापेक्षता सिद्धान्त कला का भव्य नमूना है ।" विज्ञान की आधार-शिला तथ्यों में निहित है और विज्ञान का मूल कार्य 'सत्य' की खोज करना है । श्राडिंगर का कथन है "विज्ञान का उद्देश्य वस्तुओं के बारे में सही-सही और पर्याप्त कथन प्रस्तुत करना है ।" आजकल तथ्यों के लिए प्रेक्षण के फल, सेंस डेटा, मापन आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं और कल्पना विलास के लिए परिकल्पना, धारणा, सिद्धान्त, विचार जैसे शब्द । इस तरह विज्ञान में तथ्यों एवं कल्पना विलासों की गंगा-यमुना मिलती है—अजीब संगम मिलता है । पाइनकेरे का कहना है "विज्ञान के नियम न तो तथ्यों के कथनमात्र हैं जिनकी पुष्टि प्रयोगों से होती है, न ऐसे कथन हैं जो मन से निकले होते हैं । अपितु वे मनोकल्पित धारणाएं हैं कि कुछ शब्दों या पदों को किस प्रकार प्रयुक्त किया गया है । ये नियम मानव मन की मुक्त उपज हैं ।" आइंस्टीन

का मत है कि प्रकृति के सारल्य को शब्दों के प्रयोग से नहीं बतलाया जा सकता । विवरण अर्थात् भाषा तथा विज्ञान के सिद्धान्तों में अन्तर तो रहा ही करता है ।

प्रेक्षण और विज्ञान की भाषा के बीच जो अन्तराल है उसके लिए सेतु का कार्य करता है आपरेशन (संक्रिया)। सरल पदों या शब्दों के अर्थ बताने के लिए आपरेशन प्रयुक्त किये जाते हैं । लेकिन शब्द चाहे कैसा भी हो उसका तब तक कोई अर्थ नहीं होता जब तक प्रयुक्त होने वाली परिस्थितियों का उल्लेख न किया जाय ।

विज्ञान में सिद्धान्तों की भरमार है और अर्न्स्ट माख के अनुसार ये सिद्धान्त "प्रेक्षणों का मितव्ययी वर्णन" हैं । मितव्ययी वर्णन इसका स्पष्ट संकेत है कि कम से कम शब्दों का सशक्त या उचित प्रयोग हो । पारिभाषिक शब्द का जन्म ऐसी ही परिस्थिति में होता है ।

विज्ञान की सिद्धान्त-रचना को "वैज्ञानिक पद्धति" कहा जाता है । सिद्धान्त रचना में किसी न किसी प्रकार की भाषा का अनिवार्य रूप से प्रयोग होता है । चूँकि भाषा अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है इसलिए संचार के लिए भाषा का प्रयोग महत्वपूर्ण साधन के रूप में किया जाता है । जैसा कि कहा जा चुका है, भाषा मौखिक या लिखित चिन्हों या संकेतों का एक व्यवस्थित तन्त्र है । मनुष्य प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को भाषा के संकेतों की सहायता से समझने का प्रयत्न करता है । साधारण व्यक्ति वस्तु का प्रयोग करता है किन्तु वस्तु विशेष को समझाने के लिए विशेष शब्दों की आवश्यकता होती है । इसे हम अतिभाषा या अति अति भाषा अर्थात् द्वितीय या तृतीय स्तर की भाषा कह सकते हैं । इसे ही यू-भाषा (यूनिवर्सल) कहा जाता है । इसमें ऐसे संकेतों का प्रयोग किया जाता है जिसको सभी लोग सीख कर प्रयोग में ला सकते हैं । गणित के चिन्ह या अन्तर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्द ऐसे ही हैं ।

ऐसे विशेष शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता विशेष पर्यावरण में अवस्थित व्यक्ति के द्वारा होने वाले अनुभवों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने के फलस्वरूप होती है । वाणी और लिपि दोनों ही के द्वारा ये अनुभव व्यक्त किये जा सकते हैं ।

स्पष्ट है कि विज्ञान की भाषा के उद्देश्य वे ही हैं जो सामान्य भाषा के हैं । तो फिर भिन्नता कहाँ है ?

कहते हैं कि ग्रीक लोग अपने अतिरिक्त संसार के अन्य लोगों को बर्बर मानते थे । फलतः वे अपनी भाषा को श्रेष्ठ तथा अन्यों की भाषा को बर्बर कहते थे । तो क्या विज्ञानी भी ऐसा ही मानता है ? नहीं । ऐसा नहीं है ।

वह अपनी सीमाओं से परिचित है । उसमें श्रेष्ठता जताने की कोई अभिलाषा नहीं है किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में जिस प्रकार 'विशिष्टता' का प्रसार हो रहा है उसके अनुसार विज्ञानी भी "अधिकाधिक विषयों के बारे में कम से कम ज्ञान रखने लगे हैं" । उनकी दृष्टि संकुचित हुई है । अतएव सामान्य व्यक्ति के लिए विज्ञानी के भावजगत में प्रविष्ट हो पाना दुष्कर लगे तो कोई आश्चर्य नहीं । फिर भी विज्ञान की भाषा 'बहुजन हिताय' है—वह अपने नियमों को लिपिबद्ध करती चलती है जिससे वह अनुशासनबद्ध रहे। किसी भी भाषा का व्याकरण भी यही कार्य करता है । किन्तु विज्ञान की भाषा का व्याकरण सामान्य व्याकरण से कुछ भिन्न हो तो आश्चर्य की बात नहीं ।

**विज्ञान की भाषा का शब्दानुशासन**—विज्ञान की भाषा में प्रतीकात्मकता का बाहुल्य है—विशेषतया रसायन, भौतिक, गणित तथा कम्प्यूटर विज्ञान में ।

विज्ञान की भाषा के दो मुख्य पक्ष हैं—

1. भाषा का तार्किक वाक्य विन्यास (Syntax aspect)
2. वैज्ञानिक कथनों तथाा उनके नामकरणों के बीच सम्बन्ध यानी अर्थविज्ञान या संकेत अर्थ विज्ञान पक्ष (Semantic aspect) ।

विज्ञान की भाषा में तीन प्रकार के शब्द आते हैं—

(अ) प्रेक्षणात्मक शब्द या पद

(ब) संक्षिप्त शब्द

(स) सैद्धान्तिक शब्द ।

**थेयोबोल्ड के अनुसार**—विज्ञान की भाषा में बिना यंत्र के इन्द्रियों से अनुभूत सीधी सादी शब्दावली प्रेक्षण से जनित शब्दावली और यन्त्र से जनित मूर्त (abstract) शब्दावली हो सकती है ।

सैद्धान्तिक शब्दावली जहाँ तक सम्भव हो सके सरल तथा मितव्ययी और सूत्र रूप में होनी चाहिए किन्तु कालान्तर में वैज्ञानिकों ने "भारी भरकम" शब्दावली का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया । उसकी शब्दावली नवीन भाव जगत को जन्म देने वाली होती है ।

कालान्तर में संकेत और प्रतीकों की बहुलता के कारण गणित को ही भाषा मान लिया गया । किन्तु गणित भाषा के साथ ही तर्क (logic) भी है। यह तर्क एक कथन को दूसरे कथन से जोड़ने में सहायक होता है । गणितीय कथन ऐसा कथन होता है जो दुनिया के किसी भी कोने पर सत्य उतरे । आधुनिक गणितज्ञ अपनी शब्दावली में पाँच मूलभूत मुहावरों का प्रयोग करता है ।

और (and), नहीं (not), कोष्ठक (bracket), & (एप्सिला) तथा उपवाक्य (Pranthesis) ।

शब्दों का सबसे बड़ा दोष है कि उनकी ठीक-ठीक परिभाषा नहीं दी जा सकती, उनके अर्थों में अनिश्चितता रहती है । कभी-कभी शब्दों के अर्थों से नई संरचनाएँ की जाती हैं जिनके लिए शब्दों में गुंजाइश नहीं रहती और तब तर्क का सहारा लेना पड़ता है ।

प्राकृतिक विज्ञानों में सामान्य नियमों की संकल्पनाओं को सूक्ष्मता या परिशुद्धता के साथ परिभाषित करना होता है । यथासम्भव संकल्पनाओं की संख्या कम से कम रखी जाती है और इनमें सूक्ष्मता (परिशुद्धता) होती है। सामान्य भाषा इन संकल्पनाओं को प्रकट नहीं कर पाती इसीलिए गणितीय संक्षिप्तियाँ व्यवहृत की जाती हैं । इस तरह सामान्य भाषा में गणितीय प्रतीक मिला दिये जाते हैं और तब प्राकृतिक नियमों को प्रतीकों के माध्यम से परिभाषित किया जाता है ।

**भाषा का विकास**—विज्ञान में नई संकल्पनाओं के विकास के साथ ही वैज्ञानिक भाषा का विकास होता है क्योंकि भाषा को नये शब्द देने पड़ते हैं और पुराने शब्दों को बदलना पड़ता है । इस तरह से सामान्य भाषा वैज्ञानिक भाषा बनती जाती है । इस क्रम में ऐसा भी समय आ सकता है जब विज्ञान की भाषा अत्यन्त क्लिष्ट बन जाय और संकल्पनाओं में पव्रिवर्तन के साथ उसे त्यागना पड़ जावे । उदाहरणार्थ, 18वीं शती में सुप्रसिद्ध रसायनज्ञ लैवोजिए के समय रसायन की भाषा का जो स्वरूप था, वह बाद में आमूल परिवर्तित हो गया ।

नइ संकल्नाओं और पुरानी भाषा का यह संघर्ष चलता रहा है । उन्नीसवीं शती में "वैद्युत चुम्बकीय क्षेत्र" जैसी नवीन संकल्पनाओं का जन्म हुआ किन्तु बीसवीं शती में इन संकल्पनाओं के विषय में सन्देह व्यक्त किया जाने लगा। बात यह थी कि उस समय ऐसी भाषा न थी जिसमें नवीन परिस्थिति की अभिव्यक्ति हो जाती । आइंस्टीन ने गणित की वैज्ञानिक भाषा से आपेक्षित सिद्धान्त का हल निकाल लिया किन्तु शीघ्र ही कठिनाई उपस्थित हुई जब 'क्वांटम सिद्धान्त' का जन्म हुआ । अब परमाणु के 'ताप' तथाा 'रंग' की व्याख्या कर पाना दुष्कर हो गया । फलतः नई भाषा का जन्म हुआ ।

अतएव जब भी सीधी सादी भाषा असफल सिद्ध होती है या अपर्याप्त लगती है तभी वैज्ञानिक भाषा का विकास होता है । उदाहरणार्थ, परमाणु संरचना को लें । इलेक्ट्रान आर्बिट, द्रव्य तरंगें, आवेश घनत्व जैसे पारिभाषिक शब्द मूल संकल्पनाओं को नया स्वरूप प्रदान करने के लिए ही गढ़े गये ।

**भाषा के दोष**—इस प्रकार हम पाते हैं कि भाषा में मुख्यतया दो दोष हैं—

1. भाषा तथ्य को उसी रूप में नहीं बता पाती—केवल असलियत का चित्र प्रस्तुत करती है । भाषा मन में उसी तरह का चित्र खींचती है—भले ही हमारे द्वारा प्रयुक्त शब्द स्पष्ट एवं सारगर्भित ( ठोस) क्यों न हों । उदाहरणार्थ mass शब्द से वस्तुत: द्रव्य (अनुभवगम्य) का भार प्रकट किया जाता है किन्तु बाद में इसका प्रयोग अदृश्य ऊर्जा (invisible energy) के लिए होने लगा । गणित तो संकट में पड़ जाती है । उसे द्वैतरहित प्रणाली को जन्म देना होता है जिसे ला पाना दुष्कर काम है ।

2. जैसा कि कहा जा चुका है कोई भी भाषा नई परिस्थितियों का चित्रण करमे में समर्थ नहीं हो पाती फलत: भाषा का विकास आवश्यक है । जो भाषा जितनी विकासशील होगी, उतनी ही वह विज्ञान की भाषा बनने में सक्षम होगी ।

**विज्ञान की भाषा की विविध शैलियाँ**—यदि हम सत्रहवीं शती की भाषा के स्वरूप की कल्पना पर विचार कर लें तो उसकी विविध शैलियों का कुछ आभास मिल सकेगा । पी. बी. मेडावार के अनुसार ''विज्ञान की भाषा पौरुषमयी किन्तु सरल होती है—इसमें न तो बेहद उद्धरण रहते हैं, न लम्बे निक्षिप्त वाक्य रहते हैं, न रूपकों की चकाचौंध रहती है, न ही लप्फाजबाजी होती है''। इस तरह यह आशा की जाती थी कि वैज्ञानिक शैली 'उदार एवं संगमरमर की तरह सुदृढ़ हो', उसमें आदिम शुद्धि रहे और संक्षिप्तता हो । ऐसी शैली का प्रयोग हो जो निकटता, नग्नता, सहज बोलचाल, स्पष्ट अर्थ, आदिम सरलता से युक्त हो और गणितीय सरलता के सन्निकट हो । 'रायल सोसाइटी' ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के प्रवर्द्धन एवं भटकाव को त्यागने के लिए आह्वान किया । उसने बल दिया कि प्रकृति के ज्ञान को अलंकारों से, कल्पनाओं से तथा कपोलकल्पित कथाओं से यथासंभव दूर रखा जाय।

परिणाम यह निकला कि वैज्ञानिकों ने शुष्क, नीरस, बौद्धिकता के भार से बोझिल शैली का सूत्रपात किया । यही न्यूटन की शैली थी । और अंग्रेजी तथा जर्मन भाषाओं में इसी को ग्रहण किया गया । फ्रेंच में डिकार्टे द्वारा प्रचारित कार्टीजियन शैली लोकप्रिय बनी रही । अंग्रेजी में रदरफोर्ड इसके अपवाद माने जाते हैं । वे गम्भीर से गम्भीर वैज्ञानिक शोधपत्रों में वार्तालापों का उल्लेख करते। यह कार्टीजियन शैली है जिससे वातावरण में हल्कापन आता और पाठक के मन में अमिट छाप बनी रहती ।

बोधगम्यता तथाा स्पष्टता का तकाजा था कि प्रत्येक वाक्य या शब्द समूह तुरन्त समझ में आ जाय अतएव छोटे तथा स्पष्ट वाक्यों का प्रचलन हुआ।

वाक्य के भीतर शब्दों का अनुक्रम विचारों के द्वारा निश्चित होने लगा अतएव वाक्यों को विचार की प्रगति के अनुसार ही एक दूसरे से जोड़ना आवश्यक हो गया । इस तरह भाषा का नियन्त्रण अनुक्रम, स्पष्टता, गम्भीरता, संक्षिप्तता तथा यथातथ्यता के द्वारा होना था जबकि लिखित सामग्री के संघटन को विस्तृत विवरणों के क्रम, सामग्री में सम्बद्धता तथा तर्क द्वारा नियंत्रित होना था। इस तरह गद्य की शैली कम टाठ-बाट वाली, कम प्रतिबद्ध, कम भावनात्मक, कम अलंकृत होती गई ।

चूँकि अधिकांश लेखकों को विश्वास था कि गणित की सफलता उसकी निपट शैली में निहित है अतएव उन्होंने उसे ही ग्रहण करना शुरू कर दिया गया । वे शुद्ध शब्दावली में दृढ़ रहना पसन्द करते भले ही यह पंडिताऊ तथा पढ़ने में कठिन क्यों न लगे । फलस्वरूप पारिभाषिक शब्दावली तथा प्रतीकात्मकता घर कर गई जो सामान्य प्रचलन के सर्वथा विपरीत थी । उनकी शैली इतनी स्पष्ट, विचारों के मितव्ययी संगठन से युक्त, काम करने के सही क्रम से युक्त तथा प्रस्तुति की ऐसी विधि जो सब कुछ कहने को तुली रहती हैं जिससे कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता...... किन्तु अपने ही नवोद्‌भावन को स्मरण न रख पाने के कारण लेखक सुगमतापूर्वक गणितीय जगत की शब्दावली में सिरक जाते हैं ।

हमें महान वैज्ञानिकों की कृतियों में शैलियों की रंगीन झांकी देखने को मिलती है । इस प्रसंग में न्यूटन तथाा डेकार्टे अग्रणी हैं। डेकार्ट अपने पाठकों को बाध्य नहीं करता था अपितु उन्हें फुसलाता था। उसकी कृतियों में प्रसाद गुण, सूक्ष्मता के साथ पठनीयता रहती थी । वह इतना विनयशील था कि अपनी वैज्ञानिक खोजों को अस्थायी (आजमाइशी) खोजें बतलाता और जिस तरह से खोज हुई रहती उसको उसी क्रम में लिखता। वह उपाख्यान शैली से आलोचनात्मक कल्पना को उभाड़ता और पाठकों को अपने पीछे-पीछे घुमाता रहता। बाद में यही फ्रांसीसी शैली बन गई ।

लेकिन, न्यूटन इसके सर्वथा विपरीत था । वह पुरानी ज्यामितीय शब्दावली में अपने विचारों को व्यक्त करता था । उसके शोध पत्र में ऐसे सत्य होते थे जिनकी वाहवाही पाठकगण करते और वे उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे । यद्यपि यह शैली समझने में कठिन थी किन्तु सूक्ष्मता तथा सच्चाई के लिए वैज्ञानिकों में लोकप्रिय बन गई । इससे न्यूटन अपने तरुण समकालीनों को अतिमानव तथा अनुकरणीय लगने लगा ।

गैलीलियो पहला विज्ञानी था जिसकी कृतियाँ अपनी स्पष्ट सशक्त तथा विनोदपूर्ण शैली के लिए मशहूर हैं । उसे तो आधुनिक इटैलियन गद्य का जन्मदाता ही कहा जाता है । इसी तरह पैस्कल की कृतियाँ सुन्दर गद्य की

नमूना हैं। तात्पर्य यह कि अनेक वैज्ञानिक न केवल वैज्ञानिक विचारों के स्वामी थे अपितु भाषा-शैली के भी । अंग्रेजी होने पर भी रदरफोर्ड की कार्टीजियन शैली का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । कहते हैं कि क्रिक तथा वाटसन ने नोबेल पुरस्कार प्राप्त करते समय जो शोध-पत्र लिखकर प्रस्तुत किया वह अनौपचारिक, सरल, कार्टीजियन शैली में ही था—"हम डिऑक्सीरिबोज न्यूक्लीइक अम्ल (डी. एन. ए.) के लवण के लिए संरचना प्रस्तावित करना चाहेंगे। इस संरचना के कुछ नवीन अभिलक्षण हैं जो अत्यन्त रोचक हैं।"

**हिन्दी : विज्ञान की भाषा के रूप में**—विज्ञान की भाषा के मूल तत्वों को हृदयंगम कर लेने के बाद हमें देखना है कि हिन्दी विज्ञान की भाषा बनने में सक्षम है या नहीं ?

वस्तुत: हमारे देश में हिन्दी के जिस रूप को विज्ञान की भाषा बनाने का निश्चय वैज्ञानिकों तथाा भाषाविदों ने किया है वह संस्कृतनिष्ठ है । संस्कृत को प्राचीन काल में विज्ञान की भाषा बनने का श्रेय प्राप्त था । जैसा कि विज्ञान की भाषा के विकार के अन्तर्गत कहा जा चुका है, नवीन संकल्पनाओं के साथ भाषा में आमूल परिवर्तन आता है । फलत: देश में जब वैज्ञानिक जागरण का सूत्रपात हुआ तो भारतीय भाषाओं को भावों की अभिव्यक्ति का साधन बनाने के प्रयत्न चालू हो गये । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही डा. रघुवीर ने जो पारिभाषिक कोश प्रस्तुत किया था वह संस्कृत भाषा पर आधारित था और हिन्दी के लिए उस समय की परिवर्तित वैज्ञानिक परिस्थितियों के लिए सर्वथा अनूकूल एवं उपयोगी था । किन्तु हमारी प्राचीन वैज्ञानिक शब्दावली में परिवर्तन लाये जाने की आवश्यकता थी । इसीलिए अणु, परमाणु, ऊर्जा, उष्मा जैसे शब्दों को उसी अर्थ में नहीं वरन् उनको अधिक व्यापक बनाकर प्रयुक्त किया गया । लेकिन तत्वों के नामों पर आकर गाड़ी रुकी तो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली की ओर वैज्ञानिकों तथा भाषाविदों का ध्यान गया । यही नहीं, चूँकि हमारे देश में विज्ञान की अभिव्यक्ति का माध्यम अंग्रेजी भाषा थी अतएव अनुवाद की भाषा के रूप में अपनी भाषा को सक्षम बनाने का प्रयास हुआ । फलस्वरूप अनेक संकर शब्दों का जन्म हुआ । उपसर्गों और प्रत्ययों के व्यवहार विदेशी (अंग्रेजी) शब्दों के साथ भी होने लगे । परिणाम यह हुआ कि आज हमारे पास 5 लाख पारिभाषिक शब्द हैं जिनके द्वारा विज्ञान की विविध शाखाओं के ज्ञान का अंकन एवं कथन सम्भव हो सका है ।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है विज्ञान की भाषा सामान्य से भिन्न और कृत्रिमता लिए रहती है, उसे तो सत्य की अभिव्यक्ति का साधन बनना है अतएव उसमें सूक्ष्मता के साथ स्पष्टता का होना अनिवार्य लगा। यही कारण है कि विचारों के लिए शब्दों के काठिन्य पर ध्यान नहीं दिया जाता । गम्भीरता,

भाव प्रवणता—यही तो लक्ष्य है । भले ही राजनीतिज्ञ विज्ञान की भाषा को दुरूह कहें लेकिन वैज्ञानिक इसे मानने को तैयार नहीं । किन्तु देश के वैज्ञानिक विद्वान हिन्दी को विज्ञान की भाषा बनाने में अभी भी हिचकिचाते हैं । वे बहुभाषाविद होते हुए भी हिन्दी को अभी वह सम्मान या वरीयता नहीं दे पाये जो भारतीय वैज्ञानिकों से अपेक्षित है किन्तु धीरे-धीरे हिन्दी विज्ञान की भाषा बनकर रहेगी । अभी तो केवल 48 वर्ष हुऐ हैं शब्दावली का प्रचलन हुए। और विज्ञानप्रेमियों ने पाया है कि अनेक पुराने शब्द अक्षम बन चुके हैं। उनके द्वारा वह भाव-वहन नहीं हो पाता । आज विज्ञान के प्रेमी स्वयं उपयुक्त एवं सार्थक शब्दों की खोज करने लगे हैं । कहते हैं कि स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली के 6000 शब्दों को इसीलिए परिवर्तित करने की आवश्यकता है क्योंकि वे भलीभाँति आधुनिक संकल्पनाओं को सही-सही व्यक्त करने में सक्षम नहीं हैं ।

स्मरण रहे, हिन्दी विज्ञान की भाषा बनी तो है किन्तु अनुवाद के मार्ग से । प्राकृतिक या सहज मार्ग तो यह होता कि देश के बड़े-बड़े वैज्ञानिक मूलतः हिन्दी में अपनी शोधों को व्यक्त करते । चूँकि ऐसा नहीं हो पाया इसीलिए हिन्दी को विज्ञान की भाषा के रूप में पल्लवित होने में समय लग रहा है । यद्यपि लोकप्रिय विज्ञान लेखकों ने मार्ग को सुगम बनाने का प्रयास किया है लेकिन वह साहित्य की भाषा के रूप में अधिक है, विज्ञान की भाषा के रूप में कम । रायल सोसाइटी ने विज्ञान की भाषा के जो मानदण्ड प्रस्तुत किये हैं उसमें उपमा, रूपक, उपाख्यान के सन्निवेश के लिए स्थान ही कहां है! हिन्दी में पर्यायवाची शब्दों का बाहुल्य है, लोकप्रिय विज्ञान में भले ही एक शब्द के लिए उसी के भार वाला दूसरा शब्द कोई प्रयुक्त कर लिया जावे किन्तु नितान्त वैज्ञानिक शोधपत्रों में एक ही पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए । कोई शब्द कठिन है या बोधगम्य, यह तो शब्दावली के निर्माण के समय ध्यान रखना होगा । बाद में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। गणितीय शैली में एक प्रतीक के लिए जो संकल्पना कर ली जाती है वह उसी तरह निरन्तर प्रयोग में लाई जाती है या उस संकल्पना के लिए वही प्रतीक प्रयुक्त होता रहता है । इसी प्रकार सारे पारिभाषिक शब्द हैं । इनका पूरे देश में एक ही रूप में प्रयोग करना तर्कसंगत होगा क्योंकि ''विज्ञान'' जिस ज्ञान का सूचक है उसकी सीमाएँ नहीं होतीं। यही कारण है कि अनेक पौधों या वनस्पतियों के नाम जो संस्कृत में प्राप्य थे, उसी रूप में विश्व भर में प्रचलित हैं । इसी तरह से भविष्य में विज्ञान की भाषा के रूप में हिन्दी विश्वव्यापी या सार्वभौम बन सकती है । हाँ, उसमें अधिकाधिक वैज्ञानिक कृतियां रची जावें, विविध शैलियों का विकास हो, और अधिकाधिक वैज्ञानिक

इस ओर उन्मुख हों । सौभाग्यवश कुछ वैज्ञानिक विज्ञान-कथाओं के माध्यम से हिन्दी लेखन करने लगे हैं । शोध के क्षेत्र में 'विज्ञान परिषद् अनुसंधान पत्रिका' विगत 40 वर्षों से अपना योगदान दे रही है । विश्वविद्यालय स्तर की 2000 से अधिक पाठ्य पुस्तकें अनुदित या मौलिक लेखन के फलस्वरूप प्रकाश में आई हैं । छात्र तथा अध्यापक इन्हें प्रयोग में लावें तो वैज्ञानिक भाषा का क्रमिक विकास हो । अनुवाद से परहेज किसी भाषा को नहीं होना चाहिए लेकिन उस भाषा की प्रकृति—उसके ढाँचे—उसके व्याकरण को बनाये रखना होगा । केवल अंग्रेजी को ही विज्ञान की भाषा होने का एकाधिकार नहीं प्राप्त है । जर्मन, फ्रेंच, रूसी, चीनी, जापानी—ये अनेक भाषायें एक ही विज्ञान को अपने अपने ढंग से व्यक्त करती हैं—उनमें कहीं संघर्ष नहीं है। समय के साथ भाषा में गठन आता है । हिन्दी में भी शुरुआत हो चुकी है ।

विज्ञान के लोकप्रियकरण में हिन्दी के सामर्थ्य को बढ़ाने के लिए आंचलिक शब्दों को भी ग्रहण करना पड़े तो परहेज नहीं करना होगा । विशेषतया कृषि, स्वास्थ्य एवं ऋतु संबंधी तमाम पारिभाषिक शब्द ग्रामीण जनता में प्रचलित हैं जिन्हें स्वीकार करने या जिनका प्रयोग करने में कोई हर्ज नहीं है। हिन्दी को अपनी शब्द-सम्पदा व्यापक बनानी होगी ।

# अध्याय 3
# लोकप्रिय विज्ञान लेखन तथा विज्ञान कथाएँ

विज्ञान कथा का क्षेत्र हिन्दी विज्ञान साहित्य का सबसे उपेक्षित पक्ष है। यह हिन्दी विज्ञान साहित्य की वह विधा है जिसकी हिन्दी विज्ञान लेखकों को यह सच्चाई खुले दिल से स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हम विज्ञान कथाएँ लिखने से घबराते हैं । या तो हम विज्ञानी कथाएँ लिखना ही नहीं जानते, या लिखना नहीं चाहते या फिर अस्वीकृति के डर से लिखने का साहस ही नहीं करते । कारण चाहे जो भी हो, परिणाम हमारे सामने है कि हम हिन्दी वाले विज्ञान कथाओं के क्षेत्र में क्षेत्रीय कही जाने वाली मराठी और बंगला जैसी भाषाओं से भी बहुत पिछड़ गये हैं । इतने बड़े हिन्दीभाषी क्षेत्र से हम एक भी समर्थ विज्ञान कथाकार इस देश को न दे सके । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अकेले हिन्दी में साहित्य सृजन की लहर चला दी, पर पूरे देश में आज एक भी ऐसा विज्ञान कथाकार नहीं जिससे प्रेरणा लेकर हिन्दी में विज्ञान कथाओं का एक दौर शुरू हो सके ।

**हिन्दी में ही 'क्यों' लिखें ?**—अपनी पुस्तक 'आसिमोव आन साइन्स फिक्शन' (Asimov On Science Fiction) में आइजक आसिमोव लिखते हैं कि "प्रत्येक सच्चे बुद्धिजीवी को जिसने ज्ञान की किसी शाखा में विशेषता हासिल कर ली है, चाहिए कि वह अपना ज्ञान यथासंभव हर व्यक्ति तक पहुँचाये न कि केवल अन्य विशेषज्ञों तक ही सीमित रखे ।" स्वभावत: हर व्यक्ति तक ज्ञान तभी पहुँच सकता है जबकि वह अपरिचित भाषा के बजाय उसकी अपनी भाषा में हो । जनता की अपनी भाषा, भारतवर्ष में, हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषायें हैं, न कि अंग्रेजी ।

हाँ दुर्भाग्य से अंग्रेजी अभी भी इस देश में विशेषज्ञों की भाषा बनी हुई है । पर आसिमोव की दृष्टि में सच्चे बुद्धिजीवी को अपना ज्ञान विशेषज्ञों तक (यानी अंग्रेजी में) सीमित रखने के बजाय, यथासंभव हर व्यक्ति तक (यानी हिन्दी में) पहुँचाना चाहिए । आसिमोव की दृष्टि में, ऐसे हर विशेषज्ञ के कुछ विशेष दायित्व हो जाते हैं जिन्हें उसे पूरा करना ही चाहिए । क्योंकि—

1. विज्ञान का सीधा सम्बन्ध जनता के भविष्य से है क्योंकि विज्ञान के क्षेत्र में हुई हर प्रगति, जाने-अनजाने समाज को मिटा या बचा सकती है ।

2. यदि जनता वैज्ञानिक शोधों के लिये कर देती है तो उसे यह जानने का भी हक है कि उसके द्वारा दिया गया कर (टैक्स) उसके विनाश के लिये लगाया जा रहा है या विकास के लिए ।

3. आजकल किये जा रहे सभी वैज्ञानिक शोध जनता की जेब से लिये गये पैसे से किये जाते हैं, अत: अब विज्ञान, ब्रह्मांड की गुत्थी सुलझाने में लगे किसी अकेले व्यक्ति की बपौती नहीं है ।

4. आज के युग में वैज्ञानिक शोध अब कुछ समर्पित स्वयंसेवी प्रकृति के लोगों के वश की चीज नहीं है । वैज्ञानिक शोधों की निरन्तरता और गति को बनाये रखने के लिए बड़ी संख्या में वैज्ञानिक अभिरुचि-सम्पन्न प्रशिक्षित लोगों की आवश्यकता है ।

और, यह सब केवल तभी संभव है जबकि विज्ञान का ज्ञान लोक मानस में प्रतिष्ठित हो । विज्ञान की यह प्रतिष्ठा, भारत में, केवल हिन्दी (और अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ) ही दिला सकती है । हर वैज्ञानिक खुद भी 'आम जनता' का ही एक अंश है, वह भी (वैज्ञानिक शोधों के लिए) कर का भुगतान करता है, अत: उसके लिए भी विज्ञान को 'लोकप्रिय' बनाना आवश्यक है—ताकि उसके द्वारा किये जा रहे अनुसंधान को समझने और आगे बढ़ाने के लिये अधिकाधिक योग्य 'शिष्य' उपलब्ध हो सकें । इस तथ्य को पढ़, सुन और समझ सकने के बावजूद यदि कोई भारतीय वैज्ञानिक हिन्दी (तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं) में वैज्ञानिक साहित्य सृजन को मूर्खतापूर्ण, या अनावश्यक कृत्य समझता या कहता है तो असिमोव की दृष्टि में वह एक 'गधा' है—एक खतरनाक गधा ।

### विज्ञान कथा ही 'क्यों' लिखें ?

क्या विज्ञान कथाओं की कोई उपयोगिता भी है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए ह्यूगो गर्न्सबैक (Hugo Gernsback) द्वारा संपादित विश्व की पहली विज्ञान कथा पत्रिका 'अमेजिंग स्टोरीज' (Amazing Stories) के संदर्भ में आसिमोव अपने बचपन की याद करते हैं । आसिमोव के अनुसार, उनके पिता ने उस पत्रिका को पढ़ने की छूट केवल इस कारण दे रखी थी कि उसमें छपी 'कथा' में केवल कहानी ही नहीं 'विज्ञान' भी रहता था । विज्ञान कथा में अपनी बढ़ती हुई रुचि का श्रेय, आसिमोव उस पत्रिका में छपने वाली उस 'क्विज' को देते हैं, जिसके प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ते हुऐ उन्हें 'अरुचिकर' विज्ञान कथाओं को भी कई बार पढ़ना पड़ता था ।

बार-बार अभ्यास करने पर अरुचिकर चीज भी जब रुचिकर लगने लगती है, तब विज्ञान कथाओं में भला रुचि कैसे न पैदा होगी ? यही बात हम हिन्दी

वालों को गाँठ बाँध लेनी चाहिए—यदि हिन्दी के पाठकों में विज्ञान कथाओं की माँग नहीं है या उनमें विज्ञान कथाओं के प्रति रुचि नहीं है, तो भी हमें विज्ञान कथाएँ लिखनी ही चाहिए, क्योंकि 'विज्ञान कथा' साहित्य की एक ऐसी विधा है जो विज्ञान के पाठकों को तो आकृष्ट करेगी ही, विज्ञान न जानने वालों को भी अपना दीवाना बना देगी ।

पर विज्ञान कथा की सबसे बड़ी उपयोगिता 'लर्निंग डिवाइस' (Learning device) के रूप में है। पूर्वमाध्यमिक स्तर (कक्षा 6 से 10) के बच्चों को यदि पाठ्य सहायक कार्य के रूप में कोई विज्ञान कथा पढ़ने को दी जाय तथा अगले दिन यदि कक्षा में विज्ञान की पढ़ाई उस विज्ञान कथा का सन्दर्भ देते हुए ही शुरू की जाय तो निश्चय ही बच्चे पूरी लगन व तन्मयता से पूरा व्याख्यान भी सुनेंगे और बीच-बीच में अपनी जिज्ञासाएँ भी पूछ-पूछ कर शान्त करेंगे । उदाहरण के लिए पचास के दशक में छपी आसिमोव की दो विज्ञान कथाएँ 'लकी स्टार' व 'ओसन्स ऑव वीनस' (Lucky Star & Oceans of Venus) को शुक्र ग्रह पर व्याख्यान देने से पहले बच्चों को पढ़ने हेतु दिया जा सकता है । पचास के दशक में, जब ये विज्ञान कथाएँ लिखी गईं, उपलब्ध ज्ञान के अनुसार शुक्र एक गर्म पर जल-आप्लावित ग्रह था, जिसमें पृथ्वी के 'डायनासोर युग' के प्राणियों के रहने की कल्पना की गई थी पर अब यह एक स्वीकृत तथ्य है कि शुक्र जहरीले बादलों से आवृत एक लाल तप्त ग्रह है, जिस पर जीवन तो क्या एक बूँद पानी भी सम्भव नहीं है । अब यदि यह विज्ञान कथा बच्चों को पढ़ने को दी जाय तथा अगले दिन कक्षा में (या घर पर ही) उन्हीं से पूछा जाय कि क्या शुक्र पर समुद्र है ? सम्भव है, बच्चों का उत्तर 'हाँ' में हो । अब बच्चों को यह बताया जा सकता है कि वैज्ञानिकों के अनुसार इस समय शुक्र पर 600 डिग्री फारेनहाइट (600° F) ताप है । क्या इतने ताप पर भी आसिमोव की विज्ञान कथा में वर्णित सागर में पानी सम्भव है ? ऐसे ही अनेक रोचक प्रश्न किये जा सकते हैं और प्राप्त उत्तरों को ध्यान में रखते हुए विषय से सम्बन्धित नई वैज्ञानिक जानकारियाँ दी जा सकती हैं ।

स्पष्टत: सामान्य वैज्ञानिक लेखों की अपेक्षा विज्ञान कथाओं के जरिए वैज्ञानिक तथ्यों को अधिक रोचक और ग्राह्य बनाया जा सकता है । वस्तुत: विज्ञान कथा क्या है ? इसमें और सामान्य कथाओं में अन्तर क्या है ? क्या विज्ञान कथा की अपनी कुछ अलग विशिष्टता या पहचान है ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर जाने बिना न तो विज्ञान कथा लिखी जा सकती है और न विज्ञान कथा के अच्छी-बुरी होने का निर्णय ही किया जा सकता है ।

विज्ञान कथा को परिभाषित करते हुए आसिमोव लिखते हैं, ''विज्ञान कथा साहित्य की वह विद्या है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी में सम्भावित परिवर्तनों के प्रति मानवीय प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति देती है ।'' इस परिभाषा से ही यह बात स्पष्ट है कि विज्ञान कथा में कथानक (यानी कहानी का मूल विषय) विज्ञान अथवा प्रौद्योगिकी की अवस्था या स्तर में सम्भावित परिवर्तन से सम्बद्ध होना चाहिए तथा कथानक का विकास इस प्रकार होना चाहिए कि उन परिवर्तनों के प्रति वर्तमान समाज की भावनाएँ व प्रतिक्रियाएँ स्पष्ट हो सकें । दरअसल, यह विज्ञान कथा का ही प्रभाव है कि हम जीवन-प्रक्रिया और रहन-सहन में 'प्रौद्योगिकी के द्वारा परिवर्तन' की अवधारणा को हृदयंगम कर सकें । आज यह अवधारणा हमारी निर्णय प्रक्रिया का इतना अभिन्न अंग बन चुकी है कि हम इस तथ्य को 'अलग' से समझ ही नहीं पाते । कोई भी दीर्घकालीन निर्णय करते समय यदि हम भविष्य की सम्भावित प्रौद्योगिक उन्नति को ध्यान में नहीं रखते तो निश्चय ही हमारा निर्णय बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना जा सकता । यही कारण है कि हर राजनेता, व्यवसायी और आम जनता को 'विज्ञान कथा की दृष्टि से' सोचने की सलाह आसिमेव देते हैं ।

जहाँ तक विज्ञान कथा और अन्य कथा-कहानियों में मूल अन्तर की बात है, आसिमोव कथाओं को दो वर्गों में विभाजित करते हैं—यथार्थ (Realistic) कथाएँ और अतियथार्थावादी (Surrealistic) कथाएँ । यथार्थ कथाओं का कथानक हमारे वर्तमान या अतीत के ज्ञात परिवेश के इर्द-गिर्द विकसित होता है जबकि अतियथार्थवादी कथाओं में ऐसे अज्ञात परिवेश की घटनाएँ वर्णित होती हैं जिनके बारे में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित या न के बराबर होता है। इन कथाओं को भी दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है—फैंटेसी (Fantasy) व विज्ञान कथा (SF)। फैंटेसी शब्द जिस ग्रीक मूल से व्युत्पन्न है उसका अर्थ है कल्पना । अत: आज जब हम किसी कथा को 'फैंटेसी' कहते हैं तो हमारा मतलब प्राय: ऐसी कथाओं से होता है जो विज्ञान के नियमों से सीमाबद्ध न होकर पूर्णत: कथाकार की स्वच्छन्द कल्पना का ही सृजन होती है । यहीं यह बात भी स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि फैंटेसी के कथानक में अतियथार्थ परिस्थितियों के सृजन में वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक प्रगतिवादी की कोई भूमिका नहीं होती । पर 'विज्ञान कथा' में ऐसी घटनाओं व परिस्थितियों का सृजन इसकी भूमिका ही महत्वपूर्ण होती है । विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के स्तर के अन्तर को दिखाने के लिए मंगल या किसी अन्य ग्रह-उपग्रह पर सभ्यता के विकास की कल्पना की जा सकती है या विभिन्न आकाशीय पिंडों से प्राप्त संकेतों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है अथवा किसी नाभिकीय या पर्यावरणीय ध्वंस के कारण वर्तमान प्रौद्योगिक सभ्यता का विनाश दिखाया

जा सकता है । भविष्य में वैज्ञानिक-प्रौद्योगिक सफलताओं की कल्पना में काल यंत्र प्रकाश से अधिक वेग, सर्वभाषा-भाषी यंत्रमानव (रोबोट) आदि समाहित किये जा सकते हैं ।

**विज्ञान कथा : कुछ विशिष्टताएँ**—जिस प्रकार विज्ञान की विविध शाखाओं में कुछ विशिष्ट तकनीकी पारिभाषिक शब्द होते हैं, ठीक वैसे ही विज्ञान कथाओं की भी अपनी शब्द संपदा है । विज्ञान कथाओं की यह शब्दावली विशिष्ट इस मायने मे है कि जब कभी भी ये शब्द 'विज्ञान कथा' में प्रयुक्त होंगे तो सामान्य भाषा में प्रचलित अपने अर्थ को छोड़ 'विशिष्ट' अर्थ (जो केवल विज्ञान कथाओं में लिया जाता है) ग्रहण कर लेते हैं । दुर्भाग्य से हिन्दी में विज्ञान कथाओं की पारिभाषिक शब्दावली अभी नहीं बन सकी है । इस ओर हमें विशेषकर वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग को ध्यान देना चाहिए । पर तब तक इस लेख के लिए आसिमोव द्वारा उद्धृत कतिपय अंग्रेजी शब्दों से ही काम चलाया जाय। इन उदाहरणों से इस बात का कुछ अंदाज लग सकेगा कि विज्ञान कथाकर अपनी आवश्यकता के लिए 'विशिष्ट' शब्द किस प्रकार बना लेते हैं ।

ग्रीक मूल Andros से व्युत्पन्न Android शब्द का मूल अर्थ है—'नर' की तरह का तथा ग्रीक मूल Anthropos से व्युत्पन्न शब्द Anthropoid का मूल अर्थ है 'मानव' जैसा । अत: 'मानव' जैसे रूप व आकार वाले किसी कृत्रिम यन्त्र के लिए विज्ञान कथाकारों को Anthropoid शब्द चुनना चाहिए था, पर इस शब्द में न जाने कैसे उन्हें 'बन्दर' की गंध' आने लगी और उन्होंने Android शब्द का (केवल 'नर' के बजाय 'नर-मादा' दोनों के लिए) अर्थ विस्तार कर दिया । उचित तो शायद यह होता कि उस कृत्रिम यन्त्र को 'मादा' की पहचान देने के लिए Gynoid शब्द रच लिया जाता, पर भाषाई व्युत्पत्ति के इस 'औचित्य' पर विचार करने की फुर्सत कहाँ है विज्ञान कथाकारों को। एक बार जो शब्द बन गया और चल गया तो भाषा को स्वीकारना ही पड़ेगा। लेकिन मानव जैसे रूप-आकार वाले कृत्रिम यंत्र के लिए तो Android शब्द बन गया, पर अगर विज्ञान कथाकार ने मानवीय रूप आकार के किसी जीवित प्राणी (जैसे किसी ग्रह पर) की कल्पना कर ली तो उसे क्या कहेंगे ? लीजिए Human शब्द में हमने वही ग्रीक प्रत्यय—oid (जैसा) लगा दिया और बन गया हमारा शब्द Humanoid परन्तु कुछ-कुछ इसी अर्थ में एक शब्द और हम प्रयोग करते हैं Robot—तो यह कहाँ से आया ? यह शब्द पहली बार चेकोस्लवाकिया के विज्ञान कथाकार कैरेल कैपेक की चेक विज्ञान कथा (Rossum's Universal Robots) में प्रयुक्त है और दर असल चेक शब्द Robota के अंग्रेजी अनुवाद सम्बन्धी एक छोटी-सी कठिनाई का वरदान है।

अपनी मूल भाषा में Robota 'गुलाम' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, पर चूँकि अंग्रेजी में Slave यानी 'गुलाम' मनुष्यों की एक 'जाति' का सूचक था, अत: गुलामों यानी स्वामी की इच्छानुसार काम करने वाली कृत्रिम प्रजाति को सूचित करने के लिए चेक शब्द Robota अंग्रेजी का Robot बन गया। पर इससे एक कठिनाई पैदा हो गई कि Android व Robot दोनों एक ही अर्थ प्रकट करते जान पड़े। तो विज्ञान कथाकारों ने कल्पना की एक और उड़ान भरी तथा यह स्पष्ट किया कि अधिकांशत: या पूर्णत: धातु से निर्मित कृत्रिम मानवों को Robot कहा जाएगा जबकि मानवीय ऊतकों से मिलते-दुलते पदार्थों से निर्मित कृत्रिम मनुष्य Android कहलाएगा।

ऐसे ही अनेक शब्द हैं, जिन्हें हिन्दी के भावी विज्ञान कथाकारों को जानना पड़ेगा और हिन्दी में शब्द गढ़ते समय उनके बीच व्याप्त सूक्ष्म अंतरों को भी ध्यान में रखना पड़ेगा।

एक अन्य विशिष्टता, यह है कि विज्ञान कथाओं में **पात्रों का चारित्रिक विकास नहीं हो पाता।** दूसरे शब्दों में, हम यों कह सकते हैं कि विज्ञान कथा में कथानक और कथोपकथन के सिवा और कुछ नहीं होता। ऐसा लगता है कि विज्ञान कथाकारों को पात्रों के चरित्र-चित्रण का अवसर ही नहीं मिल पाता ! बात कुछ हद तक सही भी है। खुद आसिमोव यह स्वीकार करते हैं कि विज्ञान कथा का अधिकांश कथानक तो अपरिचित परिवेश से पाठकों का तादात्म्य (परिचय) स्थापित करने में ही 'खर्च' हो जाता है। विज्ञान कथा एक ऐसे परिवेश की परिस्थितियों और घटनाओं का वर्णन करती है, जिसके बारे में पाठकों का ज्ञान अबोध शिशु के ही सदृश होता है। यही कारण है कि विज्ञान कथा में पात्रों का चारित्रिक विकास दर्शाने का समय कथाकार को नहीं मिल पाता। पर यदि कोई विज्ञान कथाकार चाहे और वह कर सके तो इस पक्ष को पर्याप्त महत्व मिल सकता है। हमारे देश में तो नैतिक मूल्यों और चरित्र का बड़ा महत्व है। संभव है पाश्चात्य विज्ञान कथा की इस कमी को दूर करने का श्रेय हमें ही मिलना हो।

## विज्ञान कथा लेखन एक कला है

लेखन एक कला है, जो निरंतर अभ्यास से ही निखरती है। लेखन, विशेषकर विज्ञान कथा लेखन का कोई ऐसा जादुई फार्मूला नहीं है जो किसी नौसिखिए को रातों रात 'विज्ञान कथाकार ' बना दे। नौसिखिए द्वारा लिखी गई रद्दी कहानियाँ ही उसे 'अच्छी' कहानियाँ लिखने के योग्य बनाती हैं। तैराक बनने के लिए जिस प्रकार डूबने का भय मन से निकालकर तालाब में कूदकर तैरना सीखना पड़ता है, ठीक वैसे ही अपनी रची प्रारंभिक विज्ञान कथाओं की अस्वीकृति का डर मन से निकालकर आपको विज्ञान कथाएँ लिखना शुरू कर देना चाहिए।

यदि आपके पास विज्ञान की डिग्री नहीं है, तो भी आप विज्ञान कथा लिख सकते हैं—लेकिन आप जो विज्ञान कथा लिखना चाहते हैं उसके कथानक के विकास के लिए जितनी साइंस जरूरी है, उतना तो आपको जानना ही चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि आपकी विज्ञान कथा का नायक अंतरिक्षयान लेकर '**टिटान**' पर पहुँचता है तो 'टिटान' के बारे में वैज्ञानिकों द्वारा अब तक अर्जित ज्ञान से आपको अवश्य परिचित होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि आप अपनी विज्ञान कथा में किसी ऐसी बात का वर्णन कर दें, जिसे वर्तमान विज्ञान गलत सिद्ध कर चुका है। हाँ, आप अपनी विज्ञान कथा में ऐसी काल्पनिक बातों का समावेश अवश्य कर सकते हैं, जिसके बारे में वैज्ञानिक ज्ञान से तर्क द्वारा निगमित (निष्पन्न) किया जा सके। पर, निश्चय ही आपकी कल्पना का 'टिटान' 'बृहस्पति' का उपग्रह नहीं होना चाहिए, क्योंकि वस्तुत: यह 'शनि' का उपग्रह है।

इसके अलावा कुछ और 'नियम' भी हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर लिखी गई विज्ञान कथाएँ 'अच्छी' सिद्ध हो सकती हैं।

**( 1 ) लिखने की तैयारी करें**—विज्ञान कथा लिखने की तैयारी की दिशा में पहला कदम है भाषा पर अधिकार। दूसरी आवश्यकता विज्ञान का ज्ञान है। जरूरी नहीं कि आप उच्चकोटि के वैज्ञानिक हों (अगर आप हैं, तब तो और भी अच्छी बात है) पर आप में स्वयं विज्ञान पढ़ने और समझने की जिज्ञासा तो होनी ही चाहिए। उदाहरण के लि, याद रखिए कि **फ्रिडरिक पोह्ल** (Frederik Pohl) एक विशिष्ट विज्ञान कथाकार हैं, जिन्होंने हाईस्कूल भी नहीं पास किया। तीसरी आवश्यकता इस बात की है कि आप विज्ञान कथाओं के नियमित और सजग पाठक बनें—ताकि शुरू में कथानक के विकास, कथा की शुरूआत व अंत आदि की तकनीकें सफलतापूर्वक 'चुरा' सकें। सुविधा के लिए **जुले बर्न, एच० जी० वेल्स, आसिमोव** को पढ़ा जा सकता है।

**( 2 ) लिखना शुरू करें**—विज्ञान कथा लिखने की प्रारम्भिक तैयारी कर चुकने के साथ-साथ लिखना भी शुरू कर दीजिए। जिस प्रकार नदी या तालाब में उतरे बिना हम तैरना नहीं सीख सकते, वैसे ही विज्ञान कथा लिखे बिना 'विज्ञान कथा' लिखना भी नहीं आ सकता। इसीलिए लिखना शुरू कीजिए और एक के बाद एक विज्ञान कथाएँ लिखते जाइए.....लिखते-लिखते आप खुद बहुत कुछ सीखेंगे........और एक दिन 'विज्ञान कथाकार' हो जाएँगे।

**( 3 ) निराश न हों**—अगर एक बार आपने विज्ञान कथाएँ लिखना शुरू कर दिया तो निराश होना भी छोड़ दीजिए। एक बार भी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए चल चुकने के बाद जो व्यक्ति कठिनाइयों से निराश होकर बीच में

ही प्रयास छोड़ देता है, वह कभी भी मंजिल तक नहीं पहुँचता। आपका लक्ष्य भी तो विज्ञान कथाकार बनना है। अत: लिखी गई विज्ञान कथाओं के प्रकाशनार्थ अस्वीकृत होने से निराश होकर धैर्य खोने के बजाय और मनोयोग से विज्ञान कथा लिखने में जुट जायँ।

**( 4 ) आजीविका का साधन न बनाएँ**—लेखन और विशेषकर विज्ञान कथा लेखन एक अद्‌भुत और संतुष्टिदायक कार्य है, तथापि कोई भी लेखक यानी कथाकार अपनी आजीविका के लिए इसी पर निर्भर नहीं रह सकता। खुद आसिमोव की पहली विज्ञान कथा तीन साल बाद छपी और तबसे लगातार लिखते रहने के बावजूद एक 'सफल' विज्ञान कथाकार बनने में उन्हें सत्रह साल और लगे।

विज्ञान कथा के कुछ विषय सुझाये जा सकते हैं—जिन्हें आप विज्ञान कथाओं के विषय मान सकते हैं। जीन बैंक, जेनेटिक इंजीनियरिंग, रोबोट या यंत्रमानव, कंप्यूटर, अंतर्ग्रहीय यात्रा, कालयात्रा (Time travel), अन्तर्नक्षत्रीय यात्रा , अन्तरिक्ष बस्तियाँ, अमरत्व, मौसम नियंत्रण, अन्तर्नक्षत्रीय संचार, ब्लैक होल, सागर संपदा का उपयोग, पर्यावरणीय विध्वंस, कृत्रिम मानव (Android) की रचना, क्लोनिंग आदि।

विज्ञान कथा के स्वरूप को परिभाषित करने के क्रम में बार-बार यह कहा गया कि फैंतासी में लिपटा इनका मायावी स्वरूप परिभाषा की सीमा में निबद्ध करना कठिन है। तथापि यह कहा जा सकता है कि विज्ञान के तथ्य भविष्य में झाँक सकने की दूरदर्शिता, उर्वर कल्पना और मानव से संबद्धता का रोचक सम्मिश्रण ही विज्ञान कथा का आधार हैं। वैज्ञानिक विश्वसनीयता ही इसकी रीढ़ है। यद्यपि कुछ विज्ञान कथा के समीक्षकों ने इस मान्यता को व्यर्थ समझा है कि विज्ञान कथा का सच्चे विज्ञान से कुछ भी लेना देना हो सकता हैं किन्तु इसे कदापि अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वैज्ञानकता के अभाव में विज्ञानकथा प्राणरहित निर्जीव शरीर के समान है।

अपने विकास के क्रम में विज्ञान कथा ने क्रमश: एडवेंचर, अतिवैज्ञानिकता, सामाजिक प्रश्नों से प्रतिबद्धता और शैली की कलात्मकता के सोपानों पर चढ़ कर अपनी यात्रा तय की है। किन्तु क्रमश: कहने का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि इनमें से कोई भी पड़ाव पीछे छूट चुका है। न्यूनाधिक हर काल की विशिष्टताएँ आगे की विज्ञान-कथा में भी विद्यमान हैं।

विज्ञान कथाओं की सर्वोपरि प्रतिश्रुति मनोरंजन के साथ-साथ पाठक वर्ग के वैचारिक क्षितिज और दृष्टिकोण को विस्तार देना है। मनोरंजन के साथ साथ इसलिए क्योंकि मनोरंजन से विहीन होकर वह विज्ञान-कथा नहीं वैज्ञानिक

प्रबन्ध मात्र रह जायेंगे (यह एक अलग विषय है कि लेखों में भी पठनीयता के लिए रोचकता वांछनीय है) । चूँकि विज्ञान किसी देश-काल की परिधि में प्रतिबंधित न होकर सार्वभौम होता है अत: विज्ञान-कथाओं की सार्वभौमिकता भी स्वत:पुष्ट है। यह कथायें हमें सारे विश्व को नियंत्रित करने वाले शाश्वत नियमों से परिचित कराती हैं। इसी सार्वभौमिकता के कारण विज्ञान-कथाओं की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। उन पर मनुष्य जाति को अधिक मानवीय बनाने का गुरुतम उत्तरदायित्व आ पड़ता है।

विज्ञान-कथाओं का दूसरा बड़ा दायित्व मानवता पर मँडराती भयानक विभीषिकाओं से सतर्क करना है। न्यूक्लियर विस्फोट, वातावरण प्रदूषण, पारिस्थितिक असंतुलन, वनों का विध्वंस, जनसंख्या की अनुपातहीन वृद्धि, ऊर्जा भंडारों का क्षय, भुखमरी, अकाल और रोग जैसे अनेकानेक दृश्य-अदृश्य राक्षस हैं जिनके चंगुल से मुक्ति दिलाने में विज्ञान कथाओं की चेतावनी सार्थक सिद्ध हो सकती है। इन विज्ञान कथाओं से ही समस्याओं की पहचान के बाद उनसे जूझने की प्राथमिकतायें भी निर्धारित की जा सकती हैं। इन विशाल उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मनुष्य में एक नई चेतना, एक नये स्वरूप, वैचारिक धरातल की सृष्टि का कार्य यह विज्ञानकथायें सफलतापूर्वक कर सकती हैं। इस दृष्टि से एक नई सोच का निर्माण आज की विज्ञान-कथाओं का सर्वप्रमुख लक्ष्य हो सकता है।

विज्ञान-कथाओं का एक और प्रभावशाली पक्ष यह भी है कि आने वाले कल के संभावित परिणामों को आज सामने रखकर वे हमारे 'आज' को भी बुद्धिमत्तापूर्वक जीने लायक बनाने का कार्य करती हैं। युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता के विध्वंसक भयावह परिणामों को दिखाकर वे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में हमें और सहिष्णु बना सकती हैं। और संभवत: संपूर्ण विश्वशान्ति और एक सुखी समाज ही सभी विज्ञानकथाओं का हैं। मानव तथा प्रकृति के संबंधों को सुधारना तो उनका प्रमुख कथ्य है ही।

एक उद्देश्यपूर्ण विज्ञान कथा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस बात पर बल देती है कि हम इस पृथ्वी के स्वामी नहीं, केवल एक अवधि विशेष के लिए इसके भंडारों के उपभोक्ता हैं और हमें न तो नीति के स्तर पर न व्यवहार के स्तर पर इसकी नियामतों के साथ मनमाना व्यवहार करने का अधिकार प्राप्त है। इसे भविष्य की पीढ़ियों के लिए अधिक समृद्ध करके छोड़ना ही हमारा कर्त्तव्य है।

आज की विज्ञान-कथा युवा पाठक वर्ग की नैतिक और बौद्धिक शिक्षा का भी एक स्रोत हो सकती है क्योंकि आज की कोरी कल्पना और फैंतासी

को यथार्थ का जामा पहनाने का उत्तरदायित्व अंततः उन्हीं के कन्धों पर पड़ने वाला आयाम देकर उसे दीर्घगामी भी बनायेंगी और विस्तृत भी करेंगी, क्योंकि अद्यतन ज्ञान को अति रोचक बना कर प्रस्तुत करना केवल विज्ञान कथाओं के वश की बात है।

मानव मन में एक सहज कौतूहल होता है यह जानने का कि मैं क्या हूँ? मेरा कल कैसा होगा? मानवजाति के लिए भविष्य के गर्भ में क्या छिपा है? और यदि आशंकायें हैं तो उनको मार्ग से दूर करने के उपाय (यदि हों तो) क्या हो सकते हैं? इन सभी प्रश्नों के उत्तर विज्ञान कथायें प्रदान कर सकती हैं, क्योंकि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रत्ययों के साथ सामाजिक चेतना को गुंफित कर, मनुष्य को एक नये युग में प्रवेश की दिशा दे सके, यही तो विज्ञान कथा की समूची यात्रा है। इन्हीं कारणों से आज के समाज को हमेशा से अधिक विज्ञान कथा की आवश्यकता है। वे हमारी प्रगति को तो निस्संदेह प्रतिबिंबित करती हैं, आज के विश्व और समाज की जटिलताओं की प्रच्छिवि भी पेश करती हैं। इनकी उपेक्षा करना इनके प्रति उदासीनता का भाव या इन्हें दूसरे दर्जे का साहित्य समझने की खतरनाक प्रवृत्ति से तो हम अपना परिप्रेक्ष्य ही खो बैठेंगे। इस तरह विज्ञान-कथायें नये युग, नये समाज, नये घटनाचक्रों के निर्माण के साथ-साथ नई वैज्ञानिक मनोवृत्ति का भी सर्जन करती हैं।

इस नई विधा के सिद्धान्तों, संयोजन, सार और विशिष्टताओं के संबंध में अभी बहुत अध्ययन-विवेचन की आवश्यकता है। किन्तु इन मूलाधारों पर मतभेद होते हुए भी एक बात सर्वमान्य है कि मानव ही साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति विज्ञान-कथाओं का भी मुख्य विषय और मुख्य उद्देश्य है। सारे सैद्धान्तिक प्रतिपादनों के बावजूद विज्ञान कथा मानवीय समस्याओं और संवेदनाओं को केन्द्र में रख कर चले तभी जीवित रह सकती है। इसके द्वारा आधुनिक युग के मानव की इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और समस्याओं की संतुलित समीक्षा की जा सकती है। आज की यह विज्ञानकथा मनुष्य और विश्व के भाग्य को पहचानने व सुधारने का एक कलात्मक और सशक्त उपाय सिद्ध हो सकती है।

❑❑❑

# अध्याय 4
# लोकप्रिय विज्ञान लेखन और विज्ञान कवितायें

वैसे तो हिन्दी में विज्ञान-लेखन के लिये काफी अरसे से कविता, कहानी, आत्मकथा, उपन्यास, डायरी आदि विधाओं का प्रयोग होता रहा है किन्तु अधिकांश लेखक स्वयं निर्मित वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग कर विषयवस्तु में जटिलता उत्पन्न कर देते हैं फलस्वरूप विज्ञान लेखन का उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता है। हिन्दी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग नई दिल्ली द्वारा मानक शब्दकोश एवं परिभाषिक शब्द संग्रह तैयार किये जा चुके हैं / जा रहे हैं। अत: इन्हीं शब्दों का प्रयोग कर लोकप्रिय विज्ञान लेखन करने की आवश्यकता है। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी होगी कि भाषा का निर्माण स्वयं में वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसी कारण भाषा-विज्ञान शब्द बना है।

विज्ञान लेखन में वैज्ञानिक सिद्धान्तों, नियमों एवं परिकल्पनाओं को सीमित शब्दों में व्यक्त करना होता है। इसे सहज बनाया जाये, सरस बनाया जाये किन्तु अलंकारों एवं मुहावरों का प्रयोग न किया जाये। वैज्ञानिक सिद्धान्तों के शब्दार्थ तथा भावार्थ दोनों एक ही होते है। भाव को उसकी तीव्रता के साथ किसी चरम बिन्दु पर पकड़ने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वह अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग स्वयं खोज लेता है। परन्तु विचार का ऐसा कोई चरम बिन्दु न होने के कारण समय के प्रवाह में बहते हुये विचारों के बिखराव के संयोजन की आवश्यकता रहेगी ही। इसके अतिरिक्त भाव की आवृत्ति या अनुकरण अपनी इच्छानुसार सम्भव नहीं है, किन्तु विचार अनेक बार प्रत्यावर्तित होने और अनूदित होने की क्षमता रखता है। भाव के सम्बन्ध में तर्क नहीं दिया जा सकता, परन्तु विचार को तर्क से प्रमाणित किया जा सकता है।

काव्यात्मक लेखन की क्षमता प्राय: हर मनुष्य में जन्म से ही होती है—आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि उसे कैसे निखारा जाये। यह तो सभी जानते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र की सम्पत्ति में उसका वैज्ञानिक साहित्य भी शामिल होता है क्योंकि उसकी गुणवत्ता पर ही उस राष्ट्र की प्रगति निर्भर करती है। परन्तु कल्पना मात्र से ऐसे साहित्य का निर्माण नहीं होता बल्कि अथक परिश्रम और अपार धन-व्यय करने के पश्चात् किये गये शोधों के परिणामों को लिपिबद्ध करने पर यह सम्भव होता है। अच्छे वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण

के लिये विज्ञान तथा साहित्य दोनों के बहुमुखी विकास की आवश्यकता पड़ती है।

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार ''विज्ञान और साहित्य-विशेषत: काव्य साहित्य ही लोकमंगल का पथ ग्रहण कर असीम स्थूल सूक्ष्म शक्तियों की सम्भावनाओं से, आज मानवजगत तथा मन का बहिरंतर रुपान्तर एवं पुनर्निर्माण कर इस युग के नरक को नये स्वर्ग का रूप दे सकते हैं, इसमें मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं। हमारे युवकों तथा छात्रों के मानव चेतना के नवीन प्रकाश का सन्देशवाहक बनकर आज धरती के पथराये मन में अपने नवीन रंग का संगीत, स्पन्दन तथा तरुण हृदयों के स्वप्नों का जागरण तथा अदम्य प्राणों का सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य भरना है—मानवता के प्रति वे अपने इस अमूल्य दायित्व को न भूलें।''

विज्ञान प्रगति की धड़कनों के स्पन्दित जीवन के आज के मनुष्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विज्ञान के प्रभाव से भला कैसे मुक्त रह सकती है? हिन्दी काव्य के इतिहास में क्रमश: छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता जैसे अनेक वाद आये। ये प्रवृत्तियाँ अपने-अपने काल की परिवर्तित स्थितियों-परिवेश या पर्यावरण में बदलाव की द्योतक हैं।

शुद्ध काव्य साहित्य के रचनाकारों तथा विज्ञानधर्मी कविताओं में मुख्य अन्तर यही है कि शुद्ध साहित्य में विज्ञान के शब्द या कभी-कभी किसी तथ्य विचार की एक झलक पायी जाती है जबकि विज्ञानधर्मी कवि वैज्ञानिक विषयों पर जैसा सोचता है वैसा ही अभिव्यक्त करता है। उसके प्रकृति के चित्रण में पर्यावरण के प्रति सचेष्टता होती है। वह गाँधी, नेहरू, राम, कृष्ण के गुणगान न करके आइंस्टीन, जगदीशचन्द्र बसु , रमन आदि के गुण गा सकता है। वह कल्पवृक्ष के नहीं नीम के गुणों का गान करेगा। वह गंगावतरण का नहीं गंगा प्रदूषण का जिक्र करेगा। यही नहीं, उसकी भाषा पारिभाषिक शब्दावली से युक्त होगी, उसके उपमान अपने होंगे। वह साहित्य के उपमानों को अपने ढंग से वैज्ञानिक तथ्यों के उजागर करने में लायेगा। उसके काव्य की गहन अनुभूति वैज्ञानिक युग में शान्ति, कल्याण, दीर्घ जीवन की कामना से युक्त होगी। वह साहित्य से प्रेरणा लेकर विषय के अनुरूप शैली, विधा का प्रयोग कर सकता है। वह दोहा, कविता या मुक्त छन्द का प्रयोग कर सकता है। वह व्यंग्य का सहारा भी ले सकता है । पहेलियों, चुटकुलों को भी लिख सकता है।

जहाँ तक रस प्रयोग का प्रश्न है वह करूण, शान्त, अद्भुत, भयानक किसी भी रस कर प्रयोग कर सकता है किन्तु किसी भी रस विशेष की प्रधानता इसलिये नहीं हो पायेगी क्योंकि ये कवितायें किसी संदेश की वाहक होती हैं। वह प्रकृति के विवरण, ग्रह नक्षत्रों के वर्णन करने में श्रृंगार रस का प्रयोग

कर सकता है तो प्रकृति में हो रहे अत्याचार की व्याख्या करने में वीर रस का।

उदाहरण के लिये यहाँ कुछ कविताओं के अंश दिये जा रहे हैं—

जग की मिटे अशान्ति शान्ति सबको सुखकर हो,
चिर निर्धनता मिटे सम्पदा प्रिय घर घर हो।
होकर प्रबल समर्थ न होंवे अत्याचारी,
तज छद्मित व्यवहार बनें हम स्नेह पुजारी।
मेरे प्रभु विज्ञानमय हमको यह वरदान दो,
सबके ही कल्याण हित अति उन्नत विज्ञान दो।

(डा० सत्य प्रकाश 'विज्ञान', दिसम्बर 1936)

भौतिक विज्ञानियों का कथन है—

''देखते नहीं होते हैं जब हम
नारंगी, नारंगी नहीं होती।''
इसीलिये कहता हूँ—
रूपसी! इतराओ नहीं
तुम्हारी कथित सुन्दरता और रूपराशि
कुछ नहीं
हमारी तंत्रिकाओं व ज्ञानेन्द्रियों की
प्रतिवर्ती क्रिया के माध्यम से
केवल हमारा ही योगदान है।

(प्रेमानन्द चन्दोला 'केशिका' 1991)

पीजिये महानुभाव!
कार्बन मोनोआक्साइड,
बैंजोपायरिन,
हाइड्रोजन सायनाइड
कार्बोलिक एसिड जैसी
खतरनाक गैसों में लिपटी
.........................
.........................
ब्रह्मा की उत्कृष्ट
और सर्वोत्तम रचना के

पाँच मिनट खा जाने वाली
सफेद-रंगीन कागज में छिपी
बदबूदार, तुच्छ सी सिगरेट।

(अनिल श्रीवास्तव, 'विज्ञान' मई-जून 1992)

चाहे हो कविता
या हो कहानी
कागज के साथ
करें न मनमानी
कागज के पीछे है
पेड़ों का क्रन्दन
पेड़ जो सजाये
नंदन कानन

(डा० हेम चन्द जोशी 'पर्यावरण संरक्षण' अप्रैल 1996)

आर्कमिडीज का सिद्धान्त :
यदि ठोस द्रव में डूबे
घटता भार लखावे
द्रव तौल तुल्य कमी के
जाते ठोस हटावे

(डा० अश्विनी कुमार सिन्हा, 'विज्ञान गरिमा सिंधु' संयुक्तांक 17 वर्ष 1995)

इन कवियों की विज्ञान कविताओं में काव्य के अंकुर हैं। वह दिन दूर नहीं जब विज्ञान कविता विशाल वृक्ष का रूप धारण करके पल्लवित-पुष्पित होगी। आप यह न सोचें कि वह अलंकार विहीन होने से नग्न होगी, रसचर्वण से रहित होने से अधम होगी या कोमलकान्त पदावली के अभाव में नीरस या शुष्क होगी। उसमें बुद्धि तत्व की प्रधानता होगी, हृदय पक्ष भी दुर्बल नहीं होगा। उसकी शाश्वतता निश्चित है।

यद्यपि हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी कवितायें बहुत कम लिखी जा रही हैं और जो लिखी भी जा रही हैं उनमें से कुछ को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि ने हठात् लेखनी चलाई हो। अत: विज्ञान कविता करते समय यह सावधानी बरती जाय कि विषयवस्तु की सहज प्रस्तुति के साथ-साथ वैज्ञानिक तथ्य यथावत् बने रहें तथा विज्ञान कविता के मूलभूत उद्देश्य (आम आदमी को विज्ञान सम्बन्धी जानकारी आसानी से प्राप्त हो जाय) की पूर्ति की जा सके।

# अध्याय 5
# लोकप्रिय विज्ञान लेखन और बाल-साहित्य

विज्ञान और विज्ञान लेखन अपने आप में दुरूह और नीरस कार्य माने जाते हैं और यदि वही विज्ञान बच्चों के लिये लिखना पड़े तो वह अपने आप में और भी कठिन कार्य हो जाता है।

जब बच्चे घर से बाहर निकलते हैं तो परिवार के परिवेश के अतिरिक्त बहुत-सी नई-नई चीजें देखते हैं, जो उनके घर-परिवार में नहीं होतीं। ऐसी सभी वस्तुओं, घटनाओं अथवा क्रियाओं के बारे में बच्चों का जिज्ञासु होना भी स्वाभाविक है। बच्चों को माँ-बाप से अपने प्रश्नों के जो उत्तर मिलते हैं उनसे अनेक बार उनकी जिज्ञासा शांत नहीं हो पाती। इस स्थिति में वे अपने निकट संबंधियों, परिचितों अथवा जहाँ से उन्हें सही उत्तर की आशा होती है, अपने ज्ञान की प्यास बुझाने का प्रयास अवश्य करते हैं। यदि यहाँ भी उन्हें समाधान नहीं मिलता तो बच्चे घर और बाहरी वातावरण के बाद स्कूल में अपने अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर खोजते हैं। थोड़ा पढ़ना-लिखना आने पर वे ऐसी पुस्तकें अथवा पत्रिकाएँ पढ़ना चाहते हैं जिससे उन्हें आनन्द मिले और साथ ही जिनसे उन्हें नई जानकारी भी हो सके।

यहीं से प्रारंभ होता है लिखित सामग्री के माध्यम से बच्चों में ज्ञान-विज्ञान का समावेश करना। जैसे-जैसे उनकी कक्षायें उच्च से उच्चतर होती जाती हैं वैसे-वैसे उनके पठन-पाठन का दायरा भी बढ़ता जाता है और छः वर्ष से सोलह वर्ष की आयु के बालक ज्ञान-विज्ञान में निरंतर सबसे आगे निकलने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। अतः वे इन वैज्ञानिक बातों के अतिरिक्त जो उनकी पाठ्यपुस्तकों में लिखी होती हैं, वे बहुत कुछ जानना चाहते हैं। हाँ, यह बात अलग है कि आज के पाठ्यक्रमों के कारण बच्चों की उम्र और उनके शारीरिक गठन की तुलना में बस्ते का बोझ कहीं अधिक भारी है। फिर भी सरल, सुबोध और रोचक वैज्ञानिक साहित्य मिले तो प्रत्येक बालक उसे ख़ुशी ख़ुशी पढ़ना चाहता है।

बच्चों के लिये छः से सोलह वर्ष के आयुवर्ग के विज्ञान साहित्य को लिखते अथवा उसे प्रकाशित करते समय यह भी देखना होगा कि छः वर्ष से ग्यारह वर्ष तक के बच्चों के लिये जो विज्ञान साहित्य लिखा जाये उसमें वैज्ञानिक कथावस्तु को समझाने के लिये लिखा तो कम जाये लेकिन उसे चित्रों, आरेखों

आदि के माध्यम से दर्शा कर समझाया अधिक जाये। जबकि ग्यारह से चौदह वर्ष के बच्चों के लिये लिखित अंश की कुछ अधिकता हो सकती है। ठीक इसी तरह, यदि चौदह से सोलह वर्ष के बच्चों का भी एक उप-आयु वर्ग मानें तो उसके लिये भी चित्र तो आवश्यक होंगे ही लेकिन उनकी संख्या तथा आकार-प्रकार में छोटे बच्चों के वैज्ञानिक लेखन की तुलना में पर्याप्त कमी की जा सकती है।

लेखन केवल प्रकाशनार्थ सामग्री के लिये ही नहीं होता बल्कि आज के वैज्ञानिक युग में विज्ञान लेखन रेडियो, टेलीविज़न जैसे दूरसंचार माध्यम के लिये भी होता है। रेडियो के माध्यम से विज्ञान-वार्तायें या अन्य वैज्ञानिक सामग्री बच्चे केवल सुनकर समझना चाहते हैं। अत: वे रेडियो के माध्यम से ऐसी विज्ञान सामग्री सुनना पसंद करते हैं जिसमें उनकी गतिविधियों से मिलता-जुलता संगीत आदि अधिक हो और विविध प्रकार के खेलों अथवा पशु-पक्षियों की आवाज़ों या जादूगर, डुगडुगी वाला आदि के खेल-तमाशों का समावेश हो तथा बीच-बीच में वैज्ञानिक बात समझा दी जाये। यहाँ पांडित्य भरी वैज्ञानिक बातें बिल्कुल नहीं चलेंगी क्योंकि बच्चे सरल सुबोध भाषा और कानों को अच्छा लगने वाला मधुर संगीत अथवा खेल-तमाशा ही सुनना चाहते हैं। इसलिये रेडियो के माध्यम के लिये बच्चों के लिये विज्ञान लिखते समय उपरोक्त परिवेश में ही लेखन को बाँधना, सजाना और सँवारना होगा।

रेडियो वार्ता के श्रोताओं की संख्या बहुत अधिक होती है और वे "अदृश्य" होते हैं। बच्चों के लिये रेडियो से विज्ञान विषयक वार्ता तैयार करते समय उपरोक्त बात को ध्यान में रखना बहुत ज़रूरी होता है।

चूँकि बच्चे अधिक देर तक लगातार सुन और पढ़ नहीं सकते, अत: विज्ञान लेखन में बच्चों के लिये वाक्य छोटे-छोटे होने चाहिये। भारी-भरकम शब्द और लम्बे-लम्बे वाक्य तथा वाक्यों में संयुक्ताक्षर बच्चों के विज्ञान लेखन में इस्तेमाल नहीं करने चाहिये। आँकड़ों से बोझिल सामग्री उन्हें ग्राह्य नहीं होगी।

विज्ञान लेखन में चाहे वह संचार माध्यमों के लिये हो अथवा पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के लिये हो, इस बात का खास ध्यान रखना चाहिये कि उससे किसी भी अंध-विश्वास या पूर्वाग्रह का समर्थन न हो पावे।

जहाँ तक टी० वी० कार्यक्रमों के लिये विज्ञान लेखन का प्रश्न है बच्चों के लिये विज्ञान के विषय तो लगभग वे ही होते हैं जो पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं और रेडियो आदि के होते हैं। लेकिन इस विधा के लिये बाल-विज्ञान लेखन में इस बात का ध्यान रखना होता है कि बोलने का पक्ष कहीं बहुत अधिक न हो जाये। क्योंकि यह माध्यम देखने और सुनने, दोनों तरीकों से ज्ञान-विज्ञान

पहुँचाने का कार्य करता है। अत: टी० वी० के लिये विज्ञान में लेखक को दिखाई जाने वाली दृश्य सामग्री को भी ध्यान में रखना होगा। बच्चों के लिये अंतरिक्ष विज्ञान, सागर विज्ञान, ख़गोल विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान आदि विषय महत्वपूर्ण हो सकते हैं। फिर भी वे अपनी उम्र के अनुसार प्राय: पशु-पक्षियों, चिड़ियाघर, शेर-चीते की ज़िंदगी, रीछ-भालू का तमाशा, बन्दर की घुड़की, कार्टून फिल्म तथा अन्य ऐसी ही चीज़ें अधिक पसंद करते हैं। अत: इन्हीं और ऐसे ही माध्यमों से बच्चों के आसपास के जीव-जगत्, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों तथा घरेलू उपकरणों से लेकर कल-कारखानों, पर्यावरण और पौष्टिक आहार, कम्प्यूटर, रोगों और बीमारियों से बचाव, खेती-बाड़ी, ट्रैक्टर, हल-बैल, साफ पानी, हवा, टेलीफोन, रसोई के उपकरण आदि सैकड़ों विषय हैं जिनके बीच बच्चे रहते हैं, के बारे में विज्ञान लेखन के द्वारा बच्चों का ज्ञान-वर्द्धन करना चाहिये।

बच्चों के लिये विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। उन्होंने विविध विज्ञान-विषयों पर अनेक सरल, सुबोध, सुन्दर और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इन पुस्तकों को देखते ही बच्चों का इन्हें एकदम उठाकर पढ़ने का मन करने लगता है। सरकारी संस्थाओं में नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, एन० सी० ई० आर० टी० तथा **विज्ञान प्रसार** प्रमुख हैं। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने जल, बिजली, हवा, चुम्बक, टेलीफोन आदि पर सरल कविताओं के रूप में सस्ती सचित्र पुस्तिकायें प्रकाशित की हैं। इसी तरह विज्ञान प्रसार भी बच्चों के तथा नव-साक्षरों के लिए उपयोगी साहित्य की रचना कराने में संलग्न है।

गैर सरकारी संस्थाओं और प्रकाशनों का अपना निजी व्यवसायिक ध्येय होता है अत: वे भी अपने लाभ को ध्यान में रखकर बच्चों के लिये यदाकदा छुटपुट पुस्तिकायें निकालते रहते हैं। पुस्तकायन, प्रभात प्रकाशन आदि दिल्ली के प्रकाशक बाल विज्ञान के प्रकाशन भी रुचि ले रहे हैं।

**बालकों के लिए लिखे गये साहित्य में**

1. वाक्य छोटे हों, सरल हों और प्रचलित/असामान्य शब्द कम से कम हों। पारिभाषिक शब्दों का जहाँ प्रयोग हो, उनकी व्याख्या या परिभाषा वहीं पर या कहीं आस-पास ही उपलब्ध हो।

2. शैली रोचक हो ताकि पाठक का मन न ऊबे; किन्तु शब्दाडम्बर में मूल तात्पर्य छिप न जाए और

3. नई-नई शोधों आर गवेषणाओं की तर्कसंगत कल्पना करके उनके लिए मार्ग सुझाए जाएँ और भावी संभावनाओं की ओर इंगित किया जाए, ताकि बालकों में धैर्यपूर्वक काम में लगे रहने और परिश्रम करने की प्रवृत्ति बढ़े।

भाषा के विषय में लोकोपयोगी लेखन के क्षेत्र में लगे लेखकों की अपनी-अपनी रायें हैं। पारिभाषिक शब्दावली को वे बालक की कक्षा के भीतर ही तक ही सीमित चाहते हैं। उनके बाहर-ये पुस्तकें इसी क्षेत्र से सम्बद्ध हैं-वे नहीं चाहते कि बच्चे रटी-रटाई लीक पर चलें।

शैली के क्षेत्र में बच्चों के साथ तादात्म्य पर ध्यान रखा गया है। कुछेक लेखकों ने कविता के माध्यम से विज्ञान विषयों को लिखा है। लेकिन शायद ही कोई ऐसी कविता हो जो हमें अथवा बच्चों को कण्ठस्थ हो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो शायद यह विधा प्रयोज्य नहीं मानी जा सकती।

कुछेक नाटक भी लिखे गये हैं। शायद इनमें भी वह प्रेरक शक्ति नहीं दिखती जो कथ्य का आस्वादन कराती रह पाये। मूल भाव को कितनों ने समझा?

कहानी शैली शायद अधिक पसन्द की जाती है, बच्चों द्वारा। किन्तु जब हम 11-16 वर्षों की आयु वाले बच्चों के लिए शैली के चुनाव की बात करते हैं तो कहानी शैली अधिक प्रभावात्मक नहीं लगती। मान लीजिए ऐल्यूमीनियम या कोयले का वृत्तान्त कहानी रूप में कहा जा रहा है। चूंकि अधिक आयु के बच्चे को कुछ न कुछ वैज्ञानिक तथ्यों की जानकारी हुई रहती है, अतः उसे लगता रहता है कि लेखक जान बूझकर तथ्यों को कहानी का रूप दे रहा है। वह तो वैज्ञानिक तथ्यों को मूल रूप में ग्रहण करने में समर्थ है तो फिर घूम फिर कर बातों का बतंगड़ क्यों? अतः कहानी शैली प्रथम आयुवर्ग के बालकों के लिए ही उपयुक्त होगी। बड़ों पर उसे आजमाना व्यर्थ लगता है।

तो अब बची निबन्ध शैली। यह तो बड़ी नीरस शैली है। इसमें मैं, तुम, के लिए स्थान नहीं। सदैव दृष्टि रहती है तथ्यों पर, उन्हें सही रूप में व्यक्त करने पर, कम से कम प्रयास से अधिकाधिक तथ्य। यहीं पर पारिभाषिक शब्दों का प्रवेश होता है-कम से कम शब्दों में, बिना किसी साहित्यिक अलंकरण के बात को स्पष्ट अंकित करने के लिए विज्ञान की भाषा सचमुच शिष्टों और सभ्यों के लिए है (रसिकों या सहृदयों के लिए)। उसमें संकेत, सूत्र, चिन्ह तो रहते ही हैं-जिनमें किसी प्रकार के परिवर्तन की-किसी स्वच्छन्दता की गुंजाइश नहीं रहती। साहित्य में पर्यायवाची शब्दों से मन की थकान दूर की जाती है, किन्तु विज्ञान में इन शब्दों को कोई स्थान नहीं है-बार-बार एक

ही शब्द प्रयुक्त होगा—लाज़मी है ऐसा। इसे आप शैली दोष-पुनरुक्ति दोष कह लीजिए किन्तु विज्ञान की भाषा के शब्द, वाक्य का गठन-पुनरुक्ति दोष कह लीजिए किन्तु विज्ञान की भाषा के शब्द, वाक्य का गठन-सभी रूखा लगने वाले होते हैं। यद्यपि जिस तथ्य को कहा जाना है वह व्यावहारिकता से पूर्ण है-अधिक साभिप्राय, किन्तु मानव मन को स्वच्छन्दता इतनी प्रिय है, शब्दों का माधुर्य ऐसा लुभावना लगता है कि उसके मन में विज्ञान की भाषा, भाषा ही क्यों विज्ञान विषय के प्रति उदासीनता छाई रहती है। बालक चाहे कक्षा में हो, या किसी विद्वान के भाषण के समय उसके मस्तिष्क में बोझ रखा रहता है। इसी को वह '**रटन्त विद्या**' कहता है-उसको स्वच्छन्दता नहीं रहती खेलवाड़ की।

इसीलिए मनोविज्ञान के पारखियों ने बच्चों के लिए 'खेल-खेल में विज्ञान' जैसी पुस्तकें लिखी हैं। सचमुच यह बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया गया शैली का विकास है। ऐसी पुस्तकें लोकप्रिय भी हुई हैं।

बात यह है कि बालक कुछ करके ही सीखना चाहता है-सीखने के साथ वह कुछ मनोरंजन चाहता है। ऐसा लेखन सचमुच बड़े ही कौशल का कार्य है। सौभाग्यवश कई स्वयंसेवी संस्थाएँ इस दिशा में कार्यरत हैं। वस्तुतः ऐसी शैली-जो कार्यशैली है-लेखन शैली नहीं-अधिक लाभप्रद सिद्ध हो रही है।

किन्तु आज कम आयु के बालकों के मनों पर **कामिक्स** का 'भूत' सवार है। चिकनी-चुपड़ी शैली में काल्पनिक पात्रों की सृष्टि करके कल्पना जगत् में विचरण कराने वाले सिद्धहस्त लेखकों की कमी नहीं। जिसे फैंटसी या फिक्शन कहते हैं-अब जिसे हम विज्ञान कथा के नाम से जानते हैं वस्तुतः कामिक्स के रूप में ही बच्चों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

कम आयु के बालकों के कच्चे मानों पर इन कथाओं के नायकों का जो प्रभाव पड़ता है वह तो एक ओर, सबसे बड़ी बात यह है कि यदि विज्ञान कथा सधी हुई नहीं है तो बच्चे को विकृत वैज्ञानिक तथ्य ही हाथ लगते हैं। शायद परी कथाओं वाले लोक में एक बार उन्हें फिर लेकर पटक दिया जाता है।

सौभाग्य से अच्छी विज्ञान कथाएँ लिखने की ओर **नार्लीकर** जैसे वैज्ञानिकों का ध्यान गया है।

❑ ❑ ❑

# अध्याय 6
# लोकप्रिय विज्ञान साहित्य : विहंगावलोकन

लोकप्रिय विज्ञान साहित्य वह है जो पाठ्य पुस्तकों, स्तरीय शास्त्रीय ग्रन्थों से हटकर, उनमें वर्णित सिद्धान्तों, प्रसंगों को आधार बनाकर, उनसे सम्बद्ध व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में प्रयुक्त हो, जो उन सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग दर्शावे तथा यह बतावे कि जीवन के विविध पक्षों या पर्यावरण को समझने-समझाने में सहायक बन सकता है। इतना ही नहीं, जो बातें (तथ्य) स्फुट रूप से ज्ञात हैं उन्हें सुसम्बद्ध रूप में एक स्थान पर प्रस्तुत करना-विषय की विशदता, उसकी सम्प्रयोजनीयता, उसके चमत्कार आदि दिखाने का प्रयास-लोकप्रिय साहित्य के लेखन/पठन को गति प्रदान करते हैं। स्कूलों/कालेजों में कक्षा में सब कुछ नहीं पढ़ाया जा सकता अत: विभिन्न आयु के विज्ञान के छात्रों/छात्राओं और स्कूल कालेज के विज्ञान न पढ़ने वाले तथा समस्त छात्रों/छात्राओं के अभिभावकों और मानविकी के छात्र/छात्राओं, नौकरी पेशे में लगे बाल-वृद्ध-बनिता के लिए सहायक ज्ञावर्धक साहित्य पढ़ना जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक है। पठन-रुचि उत्पन्न होने पर उपन्यास/कहानी की ही तरह विज्ञान विषयक साहित्य पढ़ा जाना चाहिए। साहित्य खरीदा जाना चाहिए। ज्ञान के विस्तार हेतु आवश्यक भी है कि सिद्धान्त न जानने पर भी व्यवहार जगत में इन सिद्धान्तों के मूर्त रूप से परिचित होना, या कि व्यवहार जगत की घटनाओं/वस्तुओं का समुचित ज्ञान होना आज के युग की अनिवार्यता है। सामान्य जनों के स्तर को ऊपर उठाने/वैज्ञानिक प्रवृत्ति/अभिरुचि उत्पन्न करने में यह सहायक होता है।

रोचकता ही पठन-प्रवृत्ति को उन्मुख कराने वाली है। रोचकता के लिए थोड़े ही तथ्यों को आकर्षक ढंग से सजाया जाय। तथ्यों के बोझ से उकताहट/अरुचि उत्पन्न होगी। इसीलिए विज्ञान गल्पों का प्रचलन हुआ। रोचकता के लिए शैली भी जिम्मेदार है। नाटक, कहानी, आत्मकथा आदि का आश्रय लिया जाय। कथोपकथन रोचक हों।

विज्ञान की **भाषा** में कृत्रिमता होनी स्वाभाविक है किन्तु उसका कुछ अंश साहित्यिक भाषा का अवश्य रहे। सूत्र, समीकरण एवं गणितीय अंशों कम से कम प्रयोग हो। चित्रों की अधिकता हो।

**लोकप्रिय साहित्य के लिए सम्प्रति नवीन विषय हैं**—एड्स, हमारे प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम, हमारा परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम, एंटार्कटिका, पूर्ण सूर्य ग्रहण, नीम/वर्मीकल्चर/डाइनासॉर/प्रदूषण, हिन्दी में विज्ञान पत्रकारिता।

वैज्ञानिक साहित्य सृजन और इस सृजित साहित्य का पठन-पाठन साथ-साथ चलना चाहिए अन्यथा सृजित साहित्य पुस्तकों के रूप में पुस्तकालयों में एकत्र होता चले, अल्मारियों की शोभा बढ़ाता रहे, तो यह व्यर्थ है। **सृजित साहित्य का उपयोग होना ही चाहिए।** इसके लिए मूल्य कम, आवरण पृष्ठ आकर्षक होना चाहिए।

**तकनीकी साहित्य** का पठन नहीं, उसका व्यावहारिक उपयोग होना आवश्यक है। अन्तःप्रेरणा से प्रयोगात्मक कार्य में रुचि उत्पन्न हो सकती है।

जब लोकप्रिय विज्ञान साहित्य सही ढंग से सामान्य जन तक अपनी पहुँच बना ले तो उसका उद्देश्य पूरा हो जाता है और इस सारी प्रक्रिया को विज्ञान का लोकप्रियकरण (Popularisation of Science) की संज्ञा प्रदान की जाती है। लोकप्रियकरण के लिए पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य साधनों तथा माध्यमों का प्रयोग किया जा सकता है।

आज के युग में स्वास्थ्य, भोजन, चिकित्सा के विषय में ज्ञान आवश्यक है। इस तरह आयुर्वेद एवं कृषि से हमारा सम्बन्ध जुड़ता है और इसीलिए इन विषयों में सम्बद्ध पुस्तकें पढ़नी चाहिए। यह दलील व्यर्थ होगी कि अब सब चीजें उपलब्ध हैं तो फिर उनके बारे में जानने से क्या लाभ? अधकचरे ज्ञान से क्या लाभ? यह तो वैसे ही है जैसे कि अक्षर-ज्ञान के बाद साक्षर बनने की आवश्यकता। आप न भी पढ़ें इस लोकप्रिय साहित्य को, किन्तु भावी पीढ़ी को, बच्चों को इसे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें, खरीद कर लावें और पढ़ने के लिए कहें।

यह समाचार-पत्र के समाचारों या राजनीति से कम आवश्यक नहीं है। विज्ञान का सरल ज्ञान लोकप्रिय पुस्तकों से ही अर्जित किया जा सकता है। जरूरत है दुकानों/पुस्तकालयों में जाकर नवीनतम साहित्य का अवलोकन एवं अवगाहन करने की।

यही नहीं, लिखने के लिए भी उपलब्ध ग्रन्थों का अवलोकन/जानकारी आवश्यक है। **अच्छी कृति की प्रशंसा होनी चाहिए**-उसे बारम्बार छपना चाहिए। बहुत अधिक पुस्तकों के बजाय यदि कुछ ही अच्छी पुस्तकें हों तो काम चल जावेगा। संख्या नहीं, पुस्तकों की **गुणवत्ता** पर बल देना होगा। कोई कारण नहीं कि नये से नये विषयों पर तुरन्त अच्छी पुस्तकें लिखी न जा सकें। किसी

भी नवीन आविष्कार/घटना के तुरन्त बाद तद्विषयक पुस्तकें लिखी जानी चाहिए-इसके लिए चाहे अनुवाद ही क्यों न करना पड़े।

**अनुवाद** बुरी चीज नहीं। विश्व भर में हो रहे आविष्कारों को अपनी भाषा में लाने के लिए अनुवाद परमावश्यक है। अतः मौलिक लेखन की पृष्ठभूमि में अनुवाद के अस्तित्व से नकारा नहीं जा सकता।

लोकप्रिय साहित्य के सृजन हेतु **प्रशिक्षण** आवश्यक है। अब वह समय नहीं रहा कि जैसी भी कृति लेखक द्वारा लिख दी जाय वह प्रशंसित होगी। कम्प्यूटर युग में इंटरनेट पर अधुनातम सामग्री उपलब्ध है। इसका उपयोग कैसे हो-इसका प्रशिक्षण लेना बुरी बात नहीं। घर बैठे विश्व भर के पुस्तकालयों से सम्बद्ध होकर आवश्यक सूचना निकाली जा सकती है। अपने किशोरों, वयस्कों, वृद्धों की रुचि को समझने का भी सर्वेक्षण किया जाना होगा। इससे नवीन पुस्तक लेखन के लिये दिशा मिलेगी।

## बच्चों के लिए लोकप्रिय साहित्य

**बच्चों के** भविष्य-निर्माण में **पुस्तकों का महत्वपूर्ण** हाथ होता है। यदि उनमें वैज्ञानिक पुस्तकें पढ़ने की रुचि उत्पन्न की जावेगी तो अवश्य ही उनकी कल्पनाशक्ति, सोचने की शक्ति बढ़ेगी, वे वर्तमान आविष्कारों से परिचित होते रहेंगे और ऐसा कोई कारण नहीं कि इनमें से एक न एक बालक विज्ञान का मार्ग चुनेगा। स्कूली पढ़ाई की बोरियत दूर करने तथा समाज एवं परिवेश से अपना सामंजस्य बनाये रखने के लिए ऐसे लोकप्रिय साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। हाँ, ध्यान रहे कि वह केवल विज्ञान-गल्प न पढ़े या कि रोमांटिक विचारों में डूबा न रहे। उसे **असलियत/वास्तविकता और कल्पना में अन्तर करना ही होगा**। साहित्य, संगीत, चित्रकारी, खेलकूद आदि कलाओं में रुचि भी उतनी ही जरूरी है जितनी कि विज्ञान-अध्ययन में। चाँद, सितारों की अब मनगढ़ंत कथा नहीं, वरन् तथ्य प्राप्त हैं। उनको जानने से ज्ञान क्षेत्र का विस्तार होगा। अन्तरिक्ष के पिण्डों की सही सही जानकारी होगी। अनन्त आकाश या ब्रह्माण्ड की विराटता का अनुमान होगा। छोटी आयु में इससे अवगत होना ठीक रहेगा। डायनासॉर जैसे विराट प्राणी के परिचय से मनुष्य के विकास आदि को समझने में आसानी होगी। प्रकृति के निरीक्षण से पर्यावरण एवं प्रदूषण को समझने में सहायता मिलेगी। यह सत्य है कि **अब और आगे** माता पिता बच्चे को पहले की तरह ज्यादा बता नहीं सकेंगे-जब तक वे स्वयं इस लोकप्रिय साहित्य का भलीभाँति अध्ययन नहीं करेंगे। ''हाऊ एण्ड ह्वाइ' जैसी पुस्तकें बालकों तथा माता-पिताओं के लिए नितान्त आवश्यक हैं-दैनिक जीवन की घटनाओं को समझने-समझाने के लिए। किन्तु हिन्दी में ऐसी पुस्तकें अभी

भी आसानी से उपलब्ध नहीं हैं और जो हैं भी, उनका प्रचार-प्रसार नहीं है। उदाहरणार्थ, 'ज्ञान सरोवर' या राजकमल का विश्वकोश। 'चिल्ड्रेन नालेज बुक' भी कम सूचनाप्रद नहीं है-यह व्हीलर के स्टालों पर मिलती है पर धीरे-धीरे ओझल हो रही है।

## लोकप्रिय विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की पुस्तकें

### (Popular Science and Technology Books)

ये वे पुस्तकें हैं जिनमें विज्ञान विषयक किसी भी सूचना को (चित्रों समेत या बिना चित्रों के) सुबोध भाषा में तथा सरल शैली में व्यक्त किया गया हो और जिन्हें पढ़ने के बाद सामान्य पाठक का ज्ञान-स्तर बढ़े और उसे लगे कि विज्ञान तो उसके जीवन का अंग है और उस विषय पर अन्य पुस्तकें पढ़ने के लिए उत्कण्ठित हो। ये पुस्तकें सस्ती हों, आसानी से उपलब्ध हों। पर **इनके लेखक कौन हों?**

यदि विज्ञान के विशेषज्ञ या उच्च शिक्षाप्राप्त लेखक द्वारा ऐसी पुस्तक लिखी जाती है तो सिद्धान्तों के सही रूप में व्यक्त होने की सम्भावना रहती है-सूचना भी आदर्श होगी। अवश्य ही ऐसा लेखक अंग्रेजी का साहित्य पढ़ेगा और यदि हिन्दी में कोई पुस्तक है तो भाषा (पारिभाषिक शब्दों के लिए) के लिए वह उसे भी अवश्यक देखेगा। यूँ मुक्तलेखन (Free lancing) के लिए ऐसा अनिवार्य नहीं। ऐसे तमाम लेखक हुए हैं।

पहले प्राय: सामयिक विषयों पर निबन्ध लिखकर (किसी पत्रिका/अखबार में प्रकाशित कराकर) उन निबन्धों को पुस्तकाकार करने की प्रवृत्ति थी। इससे लेखन में प्रौढ़ता और विचारों में गहनता आती है। किन्तु सभी निबन्ध लिखने वाले पुस्तक नहीं लिखते और जिसे अभ्यास हो जाता है वह तमाम विषयों पर निबन्ध लिखता चलता है और अनेक पुस्तकें भी छपाता चलता है।

पुस्तकें छपने के **दो** ही कारण हैं—

1. विषयवस्तु सामयिक रही होगी।
2. प्रकाशक को विश्वास होगा कि पुस्तक बिक जावेगी।

किन्तु शायद ही कोई पुस्तक दुबारा छपी हो। लोकप्रियता (Popularity) का अर्थ उसका बारम्बार प्रकाशन है किन्तु सीमित पाठक वर्ग होने से अधिक प्रतियाँ नहीं बिकतीं और कुछेक पुस्तकों का ही **पुनमुर्द्रण** होता है। अब बाजार में प्रतिवर्ष तमाम पुस्तकें आती हैं जो किसी योजना के अन्तर्गत "खरीद" की दृष्टि से छपती हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये पुस्तकें पढ़ी ही जाय या सचमुच लोकप्रिय हों। होड़ में रचा साहित्य स्तरीय नहीं होगा। प्रथम बार प्राय: 1100 प्रतिया छपती हैं जबकि कम से कम दस हजार तो छपनी ही

चाहिए। यदि गीता की लाखों प्रतियाँ बिक सकती हैं तो लोकप्रिय विज्ञान की किसी प्रसिद्ध पुस्तक की क्यों नहीं क्या जितनी **लोकप्रिय पुस्तकें लिखी गईं वे सभी पढ़ी गईं?**

इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व इस पर विचार हो ले कि एक ही विषय (टॉपिक) पर अनेक पुस्तकें लिखी जाती रही हैं। इनमें कौन अच्छी है और कौन बुरी?

शायद एक पाठकवर्ग किसी एक पुस्तक को पढ़ पाता है तो अन्य पाठक किसी अन्य पुस्तक को। इससे ठीक से मूल्यांकन नहीं हो पाता। कुछेक जिज्ञासु ही एक ही विषय में प्राप्त **सारी** पुस्तकें देख या पढ़ पाते हैं।

फिर भी **हर पुस्तक का महत्व** है। उदाहरणार्थ, आइंस्टीन की जीवनी। यदि चार पुस्तकें इस पर हों तो सम्भावना यही है कि उनमें अलग-अलग सामग्री हो और इस दृष्टि से सर्वांगीणता के लिए चारों पुस्तकें संग्रहणीय हों। किन्तु जो पुस्तक पूर्ण होगी—जिसमें प्रामाणिक होगी वह चुनी जाने योग्य-अच्छी पुस्तक कहीं जावेगी।

सामान्यतया कृषि/आयुर्वेद/स्वास्थ्य/घरेलू उद्योग/ज्योतिष पर लोकोपयोगी पुस्तकें भी प्राप्त होती रही हैं किन्तु बीसवीं सदी में **नवीन विषयों** पर पुस्तकें लिखी जाने लगीं।

## प्राचीन वैज्ञानिक पुस्तकों की सूचियाँ

सी० एस० आई०आर०, नई दिल्ली की ओर से 1960 की पुस्तक प्रदर्शनी के अवसर पर एक सूची छपी थी जिसमें हिन्दी की 800 से अधिक पुस्तकों को सूचीबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत पुस्तकालय लाभप्रद सिद्ध हो सकते है—यथा स्व० श्रीनारायण चतुर्वेदी (खुर्शीद बाग लखनऊ) के पुस्तकालय में अति प्राचीन पुस्तकों के होने की सम्भावना है। स्वामी सत्यप्रकाश का पुस्तकालय जो विज्ञान परिषद में है । रमेशदत्त शर्मा एवं शिवगोपाल मिश्र एवंअन्य विज्ञान लेखकों के पुस्तकालयों में दुर्लभ पुस्तकें मिल सकती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मलन, विश्वविद्यालय पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी पुस्तकालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय,कारमाइकेल लाइब्रेरी बनारस, नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता एवं हिन्दुस्तानी एकेडमी में हिन्दी की लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें है।

## तकनीकी पुस्तकें

प्राचीन उद्योग / आविष्कार / कम्प्यूटर / अन्तरिक्ष / विज्ञान/ जैव प्रौद्योगिकी इंजीनियरी/ उर्जा/ स्वर्णकारी/ साबुन बनाना/ इलेक्ट्रोप्लेटिंग/मुर्गीपालन/ मोती की खेती/ जल कृषि/ आचार-मुरब्बे/ फोटोग्राफी/ जिल्दसादी/ वर्मीकल्चर/ नीम ठोस कचरे का निपटान/ परमाणु भट्ठी/ खुम्भी की खेती/ सीमेंट/चूना/राकेट/

प्रक्षेपास्त्र/ कृत्रिम उपग्रह/हवाई जहाज/ स्पेस लैव/ अन्तरिक्ष आदि पर कुछेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली का प्रयास सराहनीय कहा जायेगा।

लेखन में प्रगति, शैली में विकास, सम-सामयिकता के ज्ञान की दृष्टि से किसी भी लेखक के या विभिन्न लेखकों के चुने हुए निबन्धों का अत्यधिक मूल्य होगा। बहुत से लेखकों ने ऐसा किया है जो उनके कृतित्व पर प्रकाश डालने वाला है। भले ही कुछ शीर्षक तथा ऑकड़े पुराने पड़ जाय किन्तु मूल भावना या लेखन की जागरूकता और समाज में उसके प्रभाव को झुठलाया नहीं जा सकता। देश के हर प्रान्त के कोने-कोने में विज्ञान का सन्देश जनभाषा में जाना चाहिए। इससे अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हो सकेंगे।

**लोकप्रिय विज्ञान के विषय**

**मूलभूत विज्ञान**—भौतिकी/ रसायन / गणित / ज्योर्तिविज्ञान / अन्तरिक्ष,

**शुद्ध सैद्धान्तिक लोकप्रिय निबन्ध संग्रह**—इनमें लेखन/ विषय वस्तु की अधिक विविधता।

**जीव विज्ञान**—वनस्पति , प्राणि, आयुर्वेद, जैव विज्ञान, वन्य जीवन, जैव विविधता, जीवनियाँ, जन्तुशालाएं।

**कृषि**—फल विज्ञान, शस्य-फसल, पशु विज्ञान, उर्वरता, उर्वरक , भूमि।

**सम्प्रयुक्त विज्ञान**-टेक्नोलाजी,जैव प्रौद्योगिकी, कम्प्यूटर, अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष विज्ञान, राकेट, प्रक्षेपास्त्र, उपग्रह, एंटार्कटिका, वानिकी, प्रदूषण।

**बच्चों तथा प्रौढ़ों के लिए लोकप्रिय साहित्य :** विविध बाल साहित्य।

**लोकप्रियकरण की सीमाएँ**

मूल विषय या तथ्यों को त्यागे बिना लोकोक्तियों, मुहावरों, उदाहरणों, या उक्ति वैचित्र्य के द्वारा उन्हें प्रस्तुत करना। कादम्बिनी, नवनीत साप्ताहिक हिन्दुस्तान धर्मयुग में हल्के-फुल्के शीर्षक देकर साहित्यिक अभिरुचि वालों के लिए रमेश दत्त शर्मा, प्रमोद जोशी, देवेन्द्र मेवाड़ी तथा प्रेमानन्द चंदोला जी ने काफी लिखा है। केशव सागर, व्यथित हृदय, राजीव ने बच्चों के लिए बहुत लिखा है।

किन्तु शुद्ध विज्ञान, सिद्धान्त, उपकरण, आविष्कार का विवरण भिन्न ढंग से ही दिया जाना होता है। भावपरक विषय में विचारों की प्रधानता, विषय वस्तु की गौणता रहती है किन्तु यदि थोड़े से भी तथ्य सामान्यजन तक सही ढंग से पहुंच जाते हैं तो लोकोपयोगी विज्ञान लेखन का लक्ष्य पूरा हो जाता है।

पूर्ववर्ती लेखकों ने भले ही ऐसा न सोचा हो किन्तु नये लेखक जागरूक हैं। बस, एक ही दोष दृष्टिगोचर होता है—एक ही विषय का पिष्टपेषण, नवीनता का अभाव। नये लेखकों में अधिक पुस्तकें लिखने, अधिक धन कमाने, जल्दी विख्यात बनने की भावना प्रधान रहती है। उन्हें पाठकों की रुचि, पाठकों के अभिमत/ आलोचना की कोई परवाह नहीं रहती। किन्तु यदि पाठकों को लाभ न पहुँचे, यदि उनमें विज्ञान अभिरुचि उत्पन्न न हो, यदि वे इन पुस्तकों को पढ़े ही नहीं, यदि इन पुस्तकों की चर्चा न चले, यदि इन पुस्तकों के गुण-दोषों की समीक्षा न हो, तो सारा प्रयास व्यर्थ कहा जावेगा।

अच्छी पुस्तकों के अनुवाद और उनके अनुवादक कम उल्लेखनीय नहीं हैं। रामचन्द्र तिवारी ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया है।

**विज्ञान परिषद** ने **पुस्तकायन** के सहयोग से सामयिक वैज्ञानिक शीर्षकों पर कुछ बालोपयोगी पुस्तकें लिखाई हैं। वे सचित्र हैं यद्यपि एन० बी० टी०, राजकमल की तुलना में कम चित्रमय और छोटी किन्तु इनमें विषय का सांगोपाँग प्रस्तुतीकरण मिलेगा। विज्ञान परिषद को लगा कि बाजार में जिस तरह का अप्रमाणिक साहित्य फैला है, उसे देखते हुए वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पुस्तकें प्रकाशित की जायें। इसी कारण केचुंए तथा नीम जैसे विषयों पर पुस्तकें लिखाई गईं।

प्रारम्भ में ऐसे लोग भी विज्ञान लेखन करते रहे, जिन्होंने अपने अध्ययन के समय कुछ महत्वपूर्ण सामग्री पाई और उसे जनसामान्य तक हिन्दी के माध्यम से पहुँचाना अपना कर्तव्य समझा। इससे यह भी पता चलता है कि प्रारम्भ में लेखक वैज्ञानिक क्रान्ति की प्रगति से जुड़े रहना चाहते थे, उससे परिचित होना चाहते थे-ऐसे अनेक प्रयास मिलेंगे। यह **फ्री लांसिंग** की शुरुआत कही जा सकती है। सरस्वती, माधुरी, सुधा, वीणा, विशाल भारत आदि पत्रिकाओं के लेख इसके साक्षी हैं।

**लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें बनाम पाठ्य पुस्तकें**

पाठ्यपुस्तकें, चाहे छोटी कक्षाओं की हों या कालेज अथवा विश्वविद्यालय स्तर की-वे लोकप्रिय साहित्य के अंग नहीं हैं। क्यों? क्योंकि उनमें सिद्धान्तों, समीकरणों, सूत्रों, संकेतों के माध्यम से अधिकांश वैज्ञानिक बातें बताई-समझाई जाती हैं। साथ ही, पारिभाषिक शब्दों की भरमार रहती है। इन सबको एक छात्र ही समझ सकता है क्योंकि वह नीचे से ऊपर की श्रेणियों में जाते हुए इन सबका अभ्यस्त हो जाता है। वह लगातार इनको स्मरण करता रहता है और अभ्यास करता है। उसे इन सिद्धान्तों को समझाने में शिक्षक सहायक बनता है। ऐसे बहुत कम छात्र होंगे जो किसी भी पाठ्यपुस्तक को स्वयं से

समझ सकें। वे प्रायः टीकाओं, कुंजियों या ट्यूटोरियल की सहायता लेते हैं। किन्तु कम शिक्षित सामान्यजनों की बुद्धि के परे होती हैं ऐसी बातें ।

इन पुस्तकों में प्रायः इन सिद्धान्तों की दैनिक जीवन में व्यवहार्यता का संकेत मात्र रहता है। वस्तुतः इसी पक्ष को रोचक एवं पूर्ण बनाने के उद्देश्य से लोकप्रिय विज्ञान लेखक की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए छात्र भी प्रायः ऐसे साहित्य की तलाश में रहते हैं। पाठ्यपुस्तकों में पाठ्यक्रम इतना मर्यादित तथा सीमित रहता है कि इधर उधर की बातों के लिए अवकाश नहीं रहता। प्रायः अध्यापक भी इन्हें टालते रहते हैं। केवल कुछ ही जिज्ञासु छात्र इनके विषय में प्रश्न करते हैं और कुछेक अध्यापक ही इनके बारे में बताते हैं या छात्रों को इनके बारे में अन्यत्र से पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। किन्तु सामान्यजनों को इन्हीं तथ्यों से परिचित होने की आवश्यकता रहती है। इधर कुछ वर्षों से प्रतियोगिता–परीक्षाओं में तमाम तरह के प्रश्न पूछे जाते रहे हैं जिससे अभ्यार्थियों को बाध्य होकर इनके उत्तर पाने के लिए लोकप्रिय साहित्य की तलाश करनी पड़ती है।

प्रायः अध्यापक पाठ्यपुस्तकों पर नोट्स लिखते हैं और वे लोकप्रिय साहित्य लेखन में कम रुचि लेते हैं। किन्तु प्रतियोगिता पत्रिकाओं की भरमार हो जाने से तमाम अध्यापक तथा अन्य उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति पठित साहित्य के आधार पर पकी–पकाई सामग्री लिखते हैं।

**सम–सामयिक–साहित्य**

पुराने लेखों के लिए सम–सामयिक / तात्कालिक साहित्य तैयार कर पाना कठिन है किन्तु नये लेखक इस ओर जागरूक हैं। हाँ, यह हो सकता है कि अनुभवहीन होने से ऐसा साहित्य लोकप्रिय श्रेणी का न हो पावे। तो भी प्रयास यही होना चाहिए कि जल्द से जल्द अनुवाद द्वारा या विशेषज्ञों से सम्पर्क करके ऐसा साहित्य लगातार तैयार होता रहे और प्रकाशित भी होवे जिससे **जिस तरह से विज्ञान आगे बढ़ रहा है उससे कदम मिलाया जा सके**। राष्ट्रभाषा होने से हिन्दी पर विशेष दायित्व है कि वह अपने भाषियों को नवीन से नवीन एवं प्रामाणिकतम सामग्री प्रदान करे। एक बार संजाल स्थापित हो जाने पर एन० बी० टी० जैसी संस्थाएँ ऐसे तात्कालिक प्रकाशनों को अपने हाथ में लेकर तेजी से वितरित भी कर सकती हैं।

जब तक **अंग्रेजी के मुकाबले हिन्दी** में ऐसा प्रामाणिक, रोचक, आकर्षक साहित्य तैयार नहीं किया जावेगा, हिन्दी पिछड़ जावेगी और हमारे अरमान/ प्रयास अपूर्ण रहे जावेंगे। यदि 1947 के पूर्व लोकप्रिय लेखक कोई भी चुनौती स्वीकार कर सकते थे तो परमाणु शक्तिसम्पन्न यह देश आज क्यों नहीं कर

सकता? नौनिहालों के भविष्य के लिये देश में वैज्ञानिक क्रान्ति के लिए यह **आवश्यक है कि विज्ञान का लोकप्रिय साहित्य रामचरितमानस की तरह घर-घर पढ़ा जाय।** 'जय जवान, जय किसान' 'जय विज्ञान' का नारा बड़ा ही लोमहर्षक एवं सामयिक है। अब हमारा देश पुराणों का देश नहीं अपितु नवीनतम वैज्ञानिक सर्जनाओं का देश बने। हमें अपनी भाषा पर, उसमें सृजित साहित्य पर गर्व हो। लोग यह कहना छोड़ दें और हम यह भूल जाये कि **हिन्दी सक्षम नहीं है** और **उसमें यथेष्ठ वैज्ञानिक** साहित्य उपलब्ध नहीं है। जब घर-घर के वासी, स्कूल-स्कूल के छात्र हिन्दी में विज्ञान पढ़ेंगे, समझेंगे और उसी में लिखेंगे तो मातृभाषा की तरह विज्ञान भी हमारी माताओं के दूध के साथ उनकी सन्तानों को मिलेगा। वे डरेंगें नहीं, वे अंग्रेजी का बहाना बनाकर हिन्दी के ग्रन्थों की अनदेखी नहीं करेंगे। कानवेंट स्कूलों का सफाया हो जावेगा। मम्मी, डैडी पुकारने का युगपीछे छूट जावेगा। मातृ देवो भव, पितृदेवो भव की संस्कृति लहरावेगी जिसमें जन-जन गोता लगाकर तुष्ट होगा। देश को आगे बढ़ाने का यही मार्ग है।

प्रादेशिक भाषाएँ छोटी कक्षाओं में हिन्दी का स्थान लें किन्तु आगे हिन्दी को ही ज्ञान-पिपासा मिटाने वाली अमृत तुल्य भाषा होनी है। हमारे लोकनायकों ने बहुत पहले इसका सपना देखा था। इसे पूरा करने की जरूरत है।

**हमारे लोकप्रिय विज्ञान लेखक एकजुट हों**

कहने को तो स्वतंत्रतापूर्व **विज्ञान परिषद प्रयाग** अखिल भारतीय मंच था विज्ञान लेखकों के लिए किन्तु वे कभी एकजुट नहीं हुए। हर लेखक अपना -अपना राग अलापता रहा या जंगल में मोर नाचा किसने देखा जैसा हाल होता रहा। चूँकि राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी मान्य नहीं थी, परतन्त्रता थी इसलिए जो भी हो रहा था उसमें सुधार की गुंजाइश थी किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद योजनाबद्ध कार्य होना था। यदि प्रकाशकों की मर्जी न होती तो शायद कुछ भी न हुआ होता। लेखक स्वान्त: सुखाय लिख रहा था, उसे धन मिल नहीं रहा था, यश भी नहीं मिल रहा था, पुस्तक छपने से मात्र ''अहं'' की तुष्टि हो रही थी। देश के स्वतन्त्र होने पर 'पारिभाषिक शब्दावली' निर्माण ने बहुत समय ले लिया। और तो और, इस शब्दावली को लोकप्रिय लेखकों ने अपनाया भी नहीं। स्थिति पहले से भी अधिक खराब होने लगी।

इतने बड़े देश के लिए यदि सरकार कोई निश्चित योजना नहीं बनाती है, अपने प्रकाशन विभाग से भी विज्ञान की पुस्तकें नहीं छापती है और चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट से अंग्रेजी के सहारे विज्ञान का लोकप्रियकरण चाहती है तो बलिहारी है। विज्ञान परिषद जैसी संस्था ने भी धनाभाव के कारण रहा-सहा प्रकाशन

बन्द कर दिया। उसके पदाधिकारी अवैतनिक होकर सेवाभाव से कब तक काम करें? उसे सरकार से कोई विशेष प्रोत्साहन नहीं मिला, न ही कोई अन्य किसी विज्ञान संस्था का जन्म हुआ। हुआ तो बस इतना ही कि दो-तीन नई पत्रिकाएं निकली किन्तु कुछ समय बाद वे भी ठप्प हो गईं। सी० एस० आई० आर० ने 'विज्ञान प्रगति' निकाली। इसका खूब ढिढोंरा पिटा किन्तु एक अकेला चना भाड़ तो फोड़ नहीं सकता। सरकारी नियन्त्रण होने से यह 'हाउस मैगजीन' का रूप लेकर रह गई। इससे नये लेखक नहीं बने, नई पुस्तकें नहीं छपीं। किन्तु लेखकों को एकजुट होने की आवश्यकता है।

**सारा प्रकाशन दिल्ली में केन्द्रित**

प्रभात प्रकाशन, अलंकार प्रकाशन, पुस्तकायन, हिन्द प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन आदि दिल्ली स्थित प्रकाशन-केन्द्र बन गये हैं जहां से विज्ञान विषयक तमाम छोटी-बड़ी पुस्तकें छपी हैं। दिल्ली में न जाने कितने लेखक पैदा हो गये हैं। इनके आगे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार की कहाँ चल पाती है? सारा पुस्तक-व्यवसाय दिल्ली से नियन्त्रित हो रहा है! ऐसी स्थिति में हिन्दी प्रदेशों के **विज्ञान लेखकों के सामने बड़ी भारी समस्या है** और दिल्ली के लेखकों से स्पर्धा भी। किन्तु ये लेखक जानेमाने लेखक न होकर नये-नये हैं। इनके लेखन की परीक्षा अभी तक नहीं हो पाई। लेकिन करेगा कौन? हिन्दी के लेखक बहुत ही संकुचित दृष्टि से अपने-अपने में केन्द्रित हो चले हैं। इस प्रवृत्ति से वैज्ञानिक लेखन का कल्याण होने वाला नहीं। न ही उत्तम साहित्य के सृजन की आशा की जा सकती है।

**पुरस्कार योजनाओं के लिए पुस्तक-लेखन**

छोटे-बड़े दोनों ही कोटि के लेखक पुरस्कारों को दृष्टि में रखकर पुस्तकें लिखने लगे हैं। पुस्तक पुरस्कृत हो जाने पर उस पर पुरस्कृत छाप लगने से उसकी बिक्री सुगम और तेज होती है।

**ये लोकप्रिय लेखक हैं कौन? इनका लिखा कौन पढ़ता है? उनका लिखा कहीं रद्दी के भाव में तो नहीं बिकता?** ये अधिकांशतः अध्यापक या नौकरियों में लगे लोग हैं। कुछेक अध्यापकों ने तो ऐसे लेखन को व्यवसाय बना लिया है, वे प्रायः पैसे के लिए अधिकाधिक पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं, वे सभी विषयों पर लिखते जाते हैं, उनका विशेष विषय क्या है पता नहीं चल पाता। कुछेक फ्री लान्सर्स हैं, जिनके सामने पारिश्रमिक का प्रश्न रहता है और वे बिना पारिश्रमिक के नहीं लिखते।

पहले के लेखक कम ही लिखते थे, भाषा संस्कार, शैली आदि पर ध्यान देते थे किन्तु आजकल सूचनापरक लेख लिखना (आँकड़ों से युक्त) सामान्य

घटना है। तमाम बुलेटिनों तथा प्रगति रिपोर्टें उपलब्ध हैं जिनके आधार पर ऐसे लेख लिखे जाने लगे हैं। **स्वतन्त्र विचारों के लिये अवकाश ही नहीं रहता।** सम्मेलनों, गोष्ठियों में भी तमाम निबन्ध प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐतिहासिक निबन्ध लिखने वाले थोड़े लोग हैं। समाचार भी लिखते रहे हैं रेडियो और टेलीविजन ने हमारे लेखकों को आकृष्ट किया है। लेखकों से आशा है कि विस्तृत क्षेत्र की प्रामाणिक जानकारी रखे। वे Jack of all trades master of none न सिद्ध हों।

विशेषांकों के लि आमन्त्रित लेख लिखे जाते हैं। देखा यह गया है कि प्राय: सम्पादक -लेखक का गठबंधन काम करता है। सम्पादकगण अपने ही प्रिय लेखक को स्थान देते हैं, अन्यत्र भी उसके लिए अनुशंसा करते हैं। **बेचारे कुछ लेखक झींकते रहते हैं।** आत्म सम्मान के लिए बैठे रहते हैं। या उनके लेख वापस होते रहते हैं।

कुछेक लेखक ही प्रकाशकों को पटाकर अपनी रचनाएं छपाते और उन्हें पुरस्कृत कराते रहते हैं और आत्म प्रचार भी करते चलते हैं। दूसरों का नाम भूलकर भी उनके मुखों पर नहीं आता।

ये लेखक कभी भी इस बात पर सलाह-मशविरा या विचार-विमर्श नहीं करते कि क्या लिखा जाय, क्या बुरा है? क्या भविष्य है? क्या प्रगति है?

फीचर्स सेवा द्वारा लोकप्रिय सूचना का प्रसार हो रहा है किन्तु सस्ती किस्म की बातें छपती हैं-चमत्कार जैसी बातें। स्थायी महत्व की बातों पर ध्यान कम दिया जाता है। ये वैज्ञानिक समाचार राजनैतिक समाचारों की समता करने वाले रहते हैं-प्राय: देश-विदेश की विचित्र खोजों, खबरों से पूर्ण। आत्म-निरीक्षण, पर्यालोचन या समीक्षा, सर्वेक्षण जैसे लेखों का अभाव रहता है।

कुछ लेखक अपनी प्रस्तावित पुस्तकों को लेखमाला के रूप में प्रकाशनार्थ पत्रिकाओं में भेज कर **लोकप्रियता की आजमाइश करते** हैं और दोहरा धन कमा लेते हैं। यह प्रवृत्ति अच्छी है किन्तु पाठकों को उकताहट छूटती है-अखबारों के साप्ताहिक परिशिष्टों या पत्रिकाओं में लगातार पढ़ने से।

लोकप्रिय पुस्तक को एकाग्रचित्त होकर पढ़ना चाहिए। कभी-कभी तो कई बार । तभी वैज्ञानिक तथ्यों की महत्ता को समझा जा सकता है। और काम पड़ने पर, प्रसंग आने पर, पुस्तक के तथ्यों को सन्दर्भ रूप में उद्धृत या वर्णित किया जा सकता है। इन पुस्तकों को हैण्डबुक की तरह इस्तेमाल किया जाना चाहिए। बच्चों को पढ़ने के लिए अच्छे अंश दिये जाने चाहिए। उनसे ऐसी ही अन्य पुस्तकें पढ़ने के लिए कहा जाना चाहिए।

अच्छी पुस्तकों को अपनी रेक पर सबसे आगे रखना चाहिए। अच्छे लेखकों में नार्लिकर, मुले के नाम जिस सहजता से मुख में आते हैं उसी तरह अन्य अच्छे लेखकों के नाम आने चाहिए. हमारे लेखकों के कर्तव्य का गुणगान आवश्यक है।

जो लेखक अपने कृतित्व का गुणगान स्वयं करे, आत्म प्रशंसा में रत हो और अन्य लेखकों को हेय दृष्टि से देखे, उसकी कृतियों का अध्ययन करके यह देखना होगा कि क्या सचमुच उसका कृतित्व सराहनीय है या वह यों ही प्रलाप कर रहा है। अत्यधिक आत्म-प्रशंसा या आत्म-प्रचार ठीक नहीं। यह प्रशंसा पाठकों की ओर से आनी चाहिए। पत्रिकाओं के सम्पादकों को चाहिए कि (पुस्तक की दो प्रतियाँ न भी पहुँचे तो भी) अच्छी पुस्तकों की समीक्षा छापें जिससे पाठकों को ये पुस्तकें खरीदने में आसानी हो। कोई भी पाठक धन खर्च करने पुस्तक खरीदने के पूर्व आश्वस्त होना चाहेगा कि उससे अच्छी पुस्तक खरीदी जा रही है। बुकस्टाल में खड़े होकर पन्ने उलट-पलट कर गुण-दोष से परिचित नहीं हुआ जा सकता। ''ठोंक बाजाकर'' खरीदना ठीक होता है। इससे सत्साहित्य की ही खरीद होगी।

''खरीद कर पढ़ना'' आदत बन जाय तो लेखकों की रायल्टी बढ़े।

**साहित्यकारों से हमारे लेखक भिन्न क्यों? वे द्वितीय श्रेणी के क्यों?**

कालिदास और भास्कराचार्य या बाल्मीकि और आर्यभट के नाम एकसाथ आदरपूर्वक लिए जाते हैं किन्तु निराला और रामदास गौड़ या प्रसाद और महाबीर श्रीवास्तव के नामों को हम एकसाथ लेना पसन्द नहीं करते जबकि विज्ञान के इन लेखकों को भी मंगलाप्रसाद जैसे सम्मानित पुरस्कार मिल चुके हैं। क्या कारण है? यही कि साहित्य पर विशेष बल है। हमने विज्ञान को नकारा है या केवल अतीत के गुण गाये हैं। हमने विज्ञान लेखकों को वही या वैसा ही सम्मान देना उचित नहीं समझा-भले ही साहित्य में हम विज्ञान की खोज करते रहे हों। यही नहीं, साहित्य की विभिन्न विधाओं का अध्ययन-अध्यापन और समालोचन होता रहा है और विज्ञान को अंग्रेजों की देन-अंग्रेजी द्वारा ही अध्ययन अध्यापन का विषय मान लिया गया। इसकी परवाह नहीं की गई कि हिन्दी के द्वारा विज्ञान का अध्ययन-अध्यापन हो। छुट-पुट प्रयास हुए पर नक्कारखाने में तूती की आवाज जैसे । प्रबुद्ध वर्ग को सदैव यही लगता रहा कि हिन्दी माध्यम से विज्ञान पढ़ाया नहीं जा सकता यद्यपि हमारे भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस, प्रफुल्ल चन्द्र राय स्वदेशी के पोषक रहे, बीरबल साहनी तक हिन्दी का प्रयोग करते रहे। हिन्दी की आवाज क्षीण पड़ती गई, उसकी प्रभविष्णुता घटती गई। डॉ० रघुबीर आदि ने पुनः उसे पारिभाषिक शब्दावली प्रदान करके जीवनदान देना चाहा, पर उनका भी मजाक उड़ाया गया। और

जब शासन ने शब्दावली बनाकर पाठ्यपुस्तकों में उसके प्रयोग को अनिवार्य बना दिया तो भी विरोध शुरू हुआ—शब्दों की दुरूहता को लेकर।

अध्यापक तैयार ही नहीं हुए थोड़ा सा कष्ट सहने, शब्दावली सीखने और उसका प्रयोग करने के लिए। लेकिन नवीन पीढ़ी के छात्रों ने इंटर तक हिन्दी में सारा विज्ञान पढ़ा है और अब ऐसे अध्यापक बने हैं जिनके संस्कार हिन्दी के हैं। वे धड़ल्ले से हिन्दी में अध्यापन करते हैं। लेकिन विश्वविद्यालयों में पुनः अंग्रेजी माध्यम चलाकर छात्रों का हिन्दी ज्ञान व्यर्थ कर दिया गया और हिन्दी का नाम लेने पर 'त्राहि-त्राहि'' मचने लगी। राजनीतिज्ञों ने जले में नमक छिड़कने का काम किया। सारा मजा आज तक किरकिरा बना हुआ है।

## अब हमारे लेखक भी सम्मानित होने लगे हैं

1970 के बाद हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना के बाद कुछ वर्षों तक विश्वविद्यालय के अध्यापकों में जोश दिखाई पड़ा किन्तु 1980 तक वह ठंडा पड़ गया। अकादमियों के प्रकाशन गोदामों में सड़ने लगे। केवल म० प्र० में अध्यापन में पाठ्यपुस्तकें काम में लाई गई। उत्तर प्रदेश में विज्ञान पुस्तकों पर पुरस्कार देने की योजना बनी। फिर 1993 के बाद हिन्दी सेवा के लिए 'विज्ञान भूषण' का सम्मान दिया जाने लगा। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान ने भी डॉ० आत्माराम की मृत्यु के बाद नया सम्मान देना शुरू किया।

इस तरह अब तक कई वरिष्ठ लेखक सम्मानित हो चुके हैं किन्तु आयु का प्रतिबन्ध होने से नई पीढ़ी में बैचैनी बनी रहती है। पर्यावरण विभाग तथा अन्य हिन्दी कक्षों से भी पुस्तकें पुरस्कृत होने लगी हैं। प्रतिवर्ष कई लोग पुरस्कृत हो ही जाते हैं। लेकिन इससे लेखन का कितना हित हो रहा है, कहा नहीं जा सकता।

## प्रतिवर्ष कितनी पुस्तकें प्रकाशित हों ?

यह आवश्यक है कि

(1) पुरानी पुस्तकों की अनदेखी न हो। (2) अनुवाद अवश्य किये जायँ ·(3) नये पारिभाषिक कोश बनें। (4) सभी विषयों की पुस्तकें छापें (5) विज्ञान संस्थाएँ सरकार के कार्यों में हाथ बटावें। (6) पंचवर्षीय कार्यक्रम बने और (7)लेखन का लेखा-जोखा लिया जाय।

यदि कहा जाय कि ऊर्जा, प्रदूषण, अन्तरिक्ष, कम्प्यूटर, स्वास्थ्य, कृषि, भौतिकी, जैव विज्ञान, प्रौद्योगिकी, परमाणु ऊर्जा, एड्स, क्लोनिंग, जैव विविधता आदि पर **प्रति मास एक-एक पुस्तक छपे** तो वर्ष में 120 पुस्तकें और 5 वर्ष में 600 पुस्तकें होंगी। पर यह **संख्या बहुत बड़ी नहीं है**। प्रश्न है इतने लेखक कहाँ से आवेंगे? इतने के लिए कम से **कम 250 लेखक** चाहिए।

अभी हमारे पास अनुभवी एवं योग्य लेखकों की संख्या 200 से ऊपर नहीं है।

स्पष्ट है कि अधिक से **अधिक नवीन लेखकों को प्रशिक्षित करके विज्ञान लेखन के कार्य में लगाया जाय** और लोकप्रिय लेखन को बढ़ावा दिया जाय।

**नये लेखकों को प्रोत्साहन**

1. यह भी हो सकता है कि वर्ष भर में पाण्डुलिपियाँ आमन्त्रित की जायँ, उनकी परीक्षा करके उनके प्रकाशन की व्यवस्था की जाय।

2. यह भी हो सकता है कि कुछ विषयों की घोषणा कर दी जाय और उन पर पाण्डुलिपियाँ आमन्त्रित की जायँ।

3. यह भी सम्भव है कि नये लेखक स्वतन्त्र रूप से अपनी-अपनी पाण्डुलिपियाँ जमा करें और उनकी जाँच के बाद उपयोगी, विषयानुसार पाण्डुलिपियाँ चुनकर छपने को दे दी जायँ।

ऐसा आवश्यक है पारिभाषिक शब्दावली के उचित प्रयोग की परीक्षा करने के लिए। **यह सेन्सर बोर्ड जैसा हो** । एक मास में सारी पाण्डुलिपियाँ देख ली जायँ- विशेषज्ञों की कार्यशाला कराकर यह परीक्षण कार्य सम्पन्न कराया जाय। स्वीकृत पाण्डुलिपियों पर समुचित पारिश्रमिक दिये जाने की व्यवस्था भी हो।

लेखकों के समक्ष समस्या है **उपयोगी चित्र** जुटाने की। इसके लिए कुछ ऐसा प्रबन्ध हो कि लेखक के निर्देशन में फोटो या चित्रों को मुहैया कराया जाय।

किन्तु ऐसा न हो कि प्रशंसित सम्मानित होकर ये लेखक अपना दायित्व खो बैठें और विभिन्न गुटों/वादों को जन्म देकर मठाधीशी करने लगें।

**अन्य भाषाओं के साथ सम्पर्क**

मराठी, गुजराती तथा बँगला में जो लोकप्रिय साहित्य उपलब्ध है उसका सर्वेक्षण कराकर उपयोगी पुस्तकों का हिन्दी रूपान्तरण कराया जाय। इससे पारस्परिक मैत्री भाव बढ़ेगा और **लेखक मंच का दायरा** बढ़ेगा। लेखकगण मिलकर कुछ समान एवं मूलभूत बातों पर विचार-विमर्श भी कर सकेंगे।

**विज्ञान लेखकों का परिचय आवश्यक**

नये लेखकों के जीवन परिचय उपलब्ध हैं या उपलब्ध हो सकते हैं किन्तु पुराने या मृत लेखकों के जीवन परिचय कम ही मिलते हैं। आवश्यकता है प्रयास करके इन जीवन वृत्तों को जुटाकर छापने की। नये लेखकों में से भी ऐसे न जाने कितने हैं जिन्होंने कुछ समय तक लिख कर बन्द कर दिया है या फिर कोई पुस्तक ही न लिखी हो। उनमें से **कुछ होनहार हो सकते हैं।**

## विज्ञान लेखकों की भाषा/शैली का विवरण आवश्यक

प्रायः वैज्ञानिक सूचना विवरणात्मक गद्य में रहती है। अधिकांश पुस्तकें इसी शैली में मिलेंगी। किन्तु नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता, यात्रा विवरण, आत्मकथा आदि के रूप में यत्किंचित प्रयास होते रहे हैं।

कहानी के रूप में प्रायः विवरण ही दिये जाते रहे हैं–हवा की कहानी, प्रकाश की कहानी आदि। विज्ञान गल्प या विज्ञान कथा अब नई विधा के रूप में उभड़ी है। नाटक थोड़े हैं। उपन्यास भी थोड़े हैं। कविताएँ अब शुरू हुई हैं। इस तरह साहित्य की प्रत्येक विधा का प्रयोग विज्ञान लेखन में किया जाने लगा है। यह शुभ संकेत है।

सामान्यतः बच्चों के लिए नाटक/कहानी, कविता का ही सहारा लिया जा रहा है और इसमें सफलता भी मिली है। गणित जैसे शुष्क विषय को कविता के माध्यम से डॉ० हरिश्चन्द्र गुप्त प्रस्तुत कर सके हैं। एन० सी० एस० टी० सी० ने भी कविताएँ लिखाई हैं। सी० एस० आई० आर० ने भी ऐसा किया है। पर्यावरण से सम्बद्ध प्रचुर काव्य मानवीय संवेदनाओं से भरा पड़ा है। इसके सर्वेक्षण एवं आलोचना की आवश्यकता है।

**लोकप्रिय लेखन और भाषा :**

व्यवहार में उर्दू के चलताऊ शब्द, या कहीं कहीं संस्कृतनिष्ठ शब्द मिलेंगें किन्तु प्रायः सरल सहज खड़ी बोली जिसमें मुहावरे, श्लोक, उद्धरण, नीति वाक्य, पौराणिक प्रसंग भी प्रयुक्त हों उपयुक्त है। पर्यायों के बारे में एकमत नहीं है।

रस :

शान्त, श्रृंगार, बीर, करुण, रौद्र, बीभत्स, हास्य सभी का प्रयोग सम्भव है। किन्तु ऐसे वैज्ञानिक निबन्ध लिखे नहीं गये। भाषा-शक्ति, अभिव्यक्ति की परीक्षा के लिए ऐसा करना उचित होगा।

**क्या गद्य का कवित्वमय अनुवाद सम्भव है?** :क्यों नहीं ! गणित में हुआ है। किन्तु गद्य अधिक कसाव वाली अभिव्यक्ति है।

**विज्ञान लोकप्रियकरण के विविध उपाय**

पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ तो बहुपरिचित साधन हैं किसी भी विचार धारा के प्रचार-प्रसार के लिए। संग्रहालयों की सैर भी कम उपयोगी नहीं किन्तु सूचना के नवीन साधनों इलेक्ट्रानिक के उपलबध हो जाने से यथा रेडियो तथा दूरदर्शन और अब इन्टरनेट से ढेर सारी जानकारियों के लिये नये द्वार खुल गये हैंश्रोताओं और दर्शकों के लिए। इन नये साधनों के लिए शर्त यह है कि नियत समय पर ही **विज्ञान समाचार सुने जा सकते हैं अतः समयबद्ध कार्यक्रम**

के अनुसार देखना-सुनना होगा और इन्टरनेट से जानकारी के लिए **कम्पयूटर संचालन विधि से** परिचित होना पड़ेगा। अब तो इन्टरनेट के द्वारा कम्प्यूटर में सारा ज्ञान देखा और अंकित किया जा सकता है—सूचना प्राप्त करने का ऐसा व्यापक एवं तेज **साधन इसके पूर्व कभी नहीं था।** इससे पुस्तकों की **आवश्यकता समाप्त हो सकती** है और अपने देश या भाषा के ही स्रोतों से नहीं अपितु विश्व के विभिन्न देशों की भाषाओं का सारा ज्ञान एक स्थान पर बैठे-बैठे मिल सकता है। किन्तु क्या सामान्य पाठक ऐसा कर सकेगा? हमारे लेखक ही इन साधनों का उपयोग अपने ज्ञानवर्धन के लिए कर सकते हैं और बाद में वे इसका प्रयोग रेडियो या टी वी वार्ताओं के लिए कर सकते हैं।

लगता है कि धीरे-धीरे **छपी पुस्तकें ही विज्ञान के लोकप्रियकरण का प्रमुख साधन नहीं रह जावेंगी** इसलिए केवल प्रतिष्ठित, सक्षम, सिद्धहस्त लेखकों की पुस्तकें ही उपलब्ध होंगी। केवल **मुद्रित साहित्य पर बल देना अब समय की माँग नहीं** रही। इसलिए अधिकांश लेखक समाचारपत्रों में लिखकर अपनी लेखनी मॉजकर बहुचर्चित विषयों पर सुचिन्तित सामग्री पुस्तकों के रूप में प्रकाश में लावेंगे। स्पष्ट है कि **लेखों की संख्या** अधिक नहीं होगी। अमरीका में संग्रहालयों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

विज्ञान लोकप्रियकरण में **स्कूली छात्र** महत्वपूर्ण रोल अदा कर सकते हैं। वे अपने पड़ोसियों को शिक्षित करें-स्कूली ज्ञान के अलावा लोकप्रिय विज्ञान का प्रचार-प्रसार करें। ऐसी क्लबें बना दें जिनमें अधुनातन पुस्तकें जुटाई जायें, रेडियो-टेलीविजन के महत्वपूर्ण कार्यक्रम बताये जावें एवं विज्ञान की रोचक फिल्में दिखाई जायें। तमाम स्पर्धाएँ आयोजित हों, विजेताओं को पुरस्कार में विज्ञान की ही लोकप्रिय पुस्तकें भेंट की जायें।

इन क्लबों में व्याख्यानों के आयोजन हों। नये नये विषयों पर विषय-विशेषज्ञों से व्याख्यान दिलाये जायें। नये लोग भी व्याख्यान दें। क्लब की **हस्तलिखित पत्रिका** भी आयोजित हो सकती है जिसमें लोग लिखना और बोलना सीखें।

ऐसा सर्वेक्षण चालू हो जिसमें जनसामान्य से कुछ चुने प्रश्न पूछे जायें जो उनकी जानकारी की चाह ले सकें। उनसे यह भी पूछा जाय कि उनकी रुचि कृषि/स्वास्थ्य्य / पर्यावरण/ उद्योग/ अन्तरिक्ष/ सुरक्षा आदि में से किसमें अधिक है और कितनी गहराई तक है। इस तरह उनके लिए आवश्यक साहित्य/सूचना/ तैयार किया जाय या सूचना दी जाय।

सरकार नये-नये विज्ञान संग्रहालय, विज्ञान शहर, प्लैनेटेरियम, नेशनल पार्क, चिड़ियाघर, अभयारण्य बनावे। ये **शिक्षा के अंग स्वरूप होते हैं।** यह कार्य परोपकार के रूप में निःस्वार्थ किया जाना होगा। भले ही कुछ क्षेत्र-कार्यकर्ताओं

को धन दिया जाय किन्तु लेखकों को अपने दायित्व अपने ज्ञान के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता को ध्यान में रखकर लोकप्रियकरण के कार्य को हाथ में लेना होगा। यह धार्मिक प्रचारकार्य जैसा और उसके समानान्तर चलाया जाने वाला कार्य होना चाहिए। अपनी ख्याति या धन अर्जन को प्रमुखता देने से शायद लोकप्रियकरण का असली उद्देश्य पूरा न हो और लोकप्रियकरण भी न हो सके। जनता में, देश में वैज्ञानिक मनोवृत्ति लाने के लिए लगातार प्रयास करने की आवश्यकता है। **प्रकाशकों को भी इस बात को समझना होगा।** वे महत्वपूर्ण कड़ी हैं जनसामान्य तथा विज्ञान लेखकों के बीच। उनकी पहल के बिना एक भी पुस्तक बाजार में नहीं आ सकती। **प्रकाशक इसे समझें** । भूतकाल में वे इसे समझते रहें हैं जिसके चलते काफी पुस्तकें छपी हैं। वर्तमान में भी वे जागरूक हैं किन्तु प्राय: वे सरकारी खरीद के उद्देश्य से ही प्रतिवर्ष पुस्तकें लिखाते/छापते रहते हैं। उन्हें **स्तरीय उपयोगी साहित्य की परवाह नहीं** रहती । वे नये लेखकों को आकृष्ट करके घटिया साहित्य भी छापते हैं। उन्हें स्तरीय पुस्तकें या हिन्दी में श्रेष्ठ पुस्तकें छापने की चिन्ता नहीं। वे बाजार में अपना स्थान बनाये रखना चाहते हैं और एकाध नामी लेखक को पकड़ लेने के बाद वे मनमाने ढंग से प्रकाशन करते जाते हैं।

प्रकाशक चाहें तो **विज्ञान पत्रिकाएँ** छाप सकते हैं किन्तु वे यह झंझट मोल नहीं लेना चाहते । वे इससे कम खर्च पर अपनी पुस्तकों का विज्ञापन करते हैं।

प्राय: **पाट्यपुस्तकें** (छोत्र उपयोगी) पर ध्यान केन्द्रित करने वाले प्रकाशक लोकोपयोगी पुस्तकें छापने/बेचने के प्रति उदासीन रहते हैं। ये पाठ्यपुस्तकों की कुंजियां छापने में व्यस्त रहते हैं। चूँकि वर्तमान काल में लोकोपयोगी साहित्य की माँग है इसलिए कुछ विख्यात प्रकाशक इस साहित्य का भी गौण लाभकारी योजना के रूप में प्रकाशन करते हैं।

उन्हें इसकी परवाह नहीं, न ही उन्होंने अभी तक ध्यान दिया है कि उनकी पुस्तकों को किन्होंने पढ़ा, क्या प्रतिक्रिया हुई? वे नई-नई पुस्तकें छापने में व्यस्त रहते हैं-परिणाम चाहे जो भी रहा हो।

राजनीतिज्ञों को इस ओर दृष्टिपात करने का समय ही नहीं मिल पाता।

छात्रों एवं उनके अभिभावकों के अतिरिक्त समाज के अन्य शिक्षित लोगों की **रुचि का परिष्कार** कैसे हो- यह समझ में नहीं आता। कोरे **प्रचार, दिखावटी आन्दोलनों से भी काम नहीं बनने वाला** । कुछेक संस्थाओं एवं प्रतिष्ठित लेखकों को बागडोर हाथ में लेनी होगी। एक बार स्तरीय साहित्य तैयार हो जाय और आधारभित्ति दृढ़ हो ले तो आगे गाड़ी चल डगरेगी। कोई भी समाज

**अज्ञान लोक में रहकर प्रगति नहीं कर** सकता। लोग जगें, दूसरों को जगावें और एक बार प्रगति की धारा बह चले तो उसे सतत प्रवाहित होते रहने की दूरगामी प्रबन्ध किया जाय। चिकित्सा, संचार, भोजन, नई शिक्षा-इन सबों के लिए विज्ञान के व्यावहारिक पक्षों से अवगत होना/करना आवश्यक है। कोई भी ऐसा राष्ट्र नहीं जहाँ ऐसा न किया जाता रहा हो या हुआ हो। **अब हमारी स्वयं की वैज्ञानिक प्रगति इतनी अधिक है कि उससे जन सामान्य को अवगत कराकर जनकल्याण किया जा सकता** है। विज्ञान के लोकप्रियकरण से ही देश में हरितक्रान्ति, श्वेत क्रान्ति, सन्तति निरोध जैसी प्रगतियाँ, जन जागृतियाँ सम्भव हुई हैं। अन्तरिक्ष, खगोल आदि में भी अब रुचि जगी है। परमाणु कार्य अवश्य ही देश की जनता में नई अनुभूति पैदा करने वाले हैं-वे विनाश और विकास दोनों के संवाहक हैं। जनता को ऊर्जा/प्रदूषण/खाद्य समस्या के विभिन्न पहलुओं से परिचित होना होगा। उन्हें प्लास्टिक युग में रहते हुए प्लास्टिक के दुर्गुणों से न केवल अवगत होना होगा अपितु पर्यावरण को स्वच्छ रखने के लिए उनका कम से कम उपयोग करना होगा।

**कृषि क्रान्ति** में उर्वरकों की भूमिका, उनकी चमक-दमक के दिन बीत गये। अब वे अपना दुष्प्रभाव दिखा रहे हैं। भौम जल को दूषित करने के साथ उपज को घटा कीटनाशक पहले ही विवाद का वातावरण उत्पन्न कर चुके हैं। हमारे जल साधन चुक रहे हैं या बुरी तरह से प्रदूषित हो चुके हैं। हमारे सामने समस्या है बचे खुचे साधनों के सदुपयोग करने तथा नवीन साधनों की खोज करने की। **केवल श्रम के बल पर नहीं ,बुद्धिबल पर जोर देना होगा**। बुद्धि तथा श्रम का तालमेल आवश्यक होगा। अमरीका/चीन में ऐसा हुआ है। तो हमारे यहाँ क्यों नहीं हो सकता?

हम पूरे जोर से लोकप्रियकरण को आगे बढ़ावें। हम वन्य जीवन को भी वरीयता दें। शहरी लोग देहाती जनता को हेय दृष्टि से न देखें। वे वृक्षों बनों के महत्व को समझें। लकड़ी के सामान का उपयोग कम करें। कम पेट्रोल जलावें। वे अपने अनुभव से ग्रामीणों को ऊपर उठावें, उनका शोषण न करें। उन्हें अज्ञान के अंधकार में बनायें न रखें-यह न सोचें कि उन्हें पिछड़ा रखकर ही वे शोषण कर सकेंगे। यह कुत्सित मनोवृत्ति भगानी होगी। सभी प्राणी समान हैं-समानता का व्यवहार आवश्यक है। बुद्धिबल से मानवता/ सभ्यता को विनष्ट मत कीजिये। उसे संरक्षण प्रदान कीजिये। धरती से नाता मत तोड़िये।

जब लोग वैज्ञानिक मनोवृत्ति वाले होंगे तो राजनीति भी सुधरेगी। राजनीतिज्ञों का ध्यान केवल राजनीति पर नहीं जावेगा, वे विज्ञान के कल्याणकारी पक्ष का भरपूर दोहन कर सकेंगे। आतंक/संशय मिट जावेगा, जनता अपने परिवेश को अपने भविष्य को बेहतर ढंग से समझेगी।

मध्यव वर्ग के लोग बुक स्टालों से पुस्तकें खरीद कर पढ़ते हैं, पुस्तकालयों में भी जाते हैं किन्तु जन-सामान्य से ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती है। उसके पास **सचल पुस्तकालयों** द्वारा पुस्तकें पहुँचाने, पढ़वाने की व्यवस्था करनी होगी। लोग प्राय: समय का अभाव बतलाते हैं। पुस्तक कब पढ़ें? जीविकोपार्जन के लिए उन्हें काफी समय रेलों, बसों में यात्रा करने में बिताना पड़ता है। वे कुछ मनोरंजक पत्रिकाएं एवं अखबार इतने समय में भले पढ़ लें किन्तु लोकप्रिय विज्ञान पढ़ने का अवसर नहीं निकालते। लोग घरों पर सुबह अखबार अवश्य पढ़ते हैं दो-ढाई रुपये रोज खर्च करते हैं पर 5 या 10 रुपये मास में खर्च करके पत्रिका नहीं मँगा सकते-मँगावें भी कैसे? उन्हें पता ही नहीं रहता। बच्चों के लिए मँगावें-स्वयं भी पढ़ें। शुरुआत करनी ही होगी। सामान्य जानकारी बढ़ानी होगी-पठन की लत डालती होगी-यदि घर पर एक विज्ञान पत्रिका आने लगे तो क्रमश: वैज्ञानिक उपन्यास एवं विज्ञान की पुस्तकों के आने का दरवाजा खुल जाये। स्त्रियां मनोरमा, गृहशोभा, फेमिना, वामा के अलावा बच्चों के लिए नन्दन/पराग/ चन्दामामा खरीदती हैं। वे चकमक या अन्य विज्ञान पत्रिकाएँ भी खरीदें। स्वयं पढ़ें, बच्चों को पढ़ावें। स्कूली ज्ञान के अलावा भी बच्चों को पढ़ने को कहें। स्कूली होमवर्क में ही सारा समय न बिता दें-या कि शाम को बैड़मिंटन/स्विमिंग में भेजने में रुचि न लें। **बच्चों में संस्कार बने पढ़ने का।** पढ़ने की लत बहुत जरूरी है। नई-नई पुस्तकें मस्तिष्क को विकसित करने वाली होती हैं। स्कूली किताबें पढ़ते-पढ़ते जो ऊब छूटती है उसे दूर करने में यह लोकप्रिय साहित्य सहायक बनेगा। ऐसे तमाम लोग हुए हैं जिन्होंने स्कूली शिक्षा के बिना स्वाध्याय के बल पर तमाम खोजें कीं-जैसे एडीसन। हमारे लोगों में भी ऐसी प्रतिभाएँ हो सकती हैं जो अवसर पाकर प्रस्फुत हों।

**साइंस हिस्ट्री म्यूजियम** अच्छे साधन हैं विज्ञान के समझने के। स्कूली बच्चें तथा उनके अभिभावक अलग अलग और साथ-साथ इनकी सैर करें और विभिन्न वस्तुओं को देखें, समझें। नेशनल पार्क भी जीव जन्तुओं तथा पक्षियों से परिचित होने के अच्छे साधन हैं। जो महत्व आडियोविजुवल का है वही म्यूजियम तथा पार्कों का। इन्हें स्वच्छ होना चाहिए। पुस्तक प्रदर्शनियां, विशेषतया वर्ल्ड बुक फेयर, पुस्तकों से परिचित होने और नई नई पुस्तकें खरीदने का अनुपम अवसर होते हैं।

### विषय विशेषज्ञ हुए बिना लेखन कार्य अधूरा

विशेष करके विज्ञान कथाएं लिखने में विषय विशेषज्ञता अत्यावश्यक है। इसके साथ ही कल्पना की ऊँची उड़ान , जो तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भरी जाय और भविष्य में जो सत्य भी हो सके। विदेशी लेखकों ने ऐसा कर

दिखाया है। परिभू, स्वयंभू, शब्द या भविष्यद्रष्टा, कवि के लिये हैं, वे लेखक के भी गुण हैं। मराठी में विशेषज्ञ को तज्ञ कहा जाता है।

**रोजमर्रा के विवादों का समाधान केवल लोकप्रियविज्ञान के द्वारा**

कुछेक विवादों का उल्लेख आवश्यक हैं यथा—

1. महाराष्ट्र में सामान्य नमक पर रोक और केवल आयोडीन युक्त नमक की आपूर्ति।

2. चाकलेटों की पन्नियाँ

3. फ्लोराइड युक्त दंतमंजन का प्रयोग

4. वियाग्रा पुंसत्व की औषधि

5. अंग-प्रत्यरोपण, अंगों की चोरी

6. एक सन्तान कि दो-अल्ट्रासाउण्ड का दुरुपयोग

7. मानव क्लोनिंग, बायोटेक्नालाजी

8. यूरिया का प्रयोग कम किया जाय

9. मोनोकल्चर के दोष

10. एच आई वी का रक्त में होना यह जरूरी नहीं कि मृत्यु हो ही जाय। अत: जनता में इस संदेश को कौन दे? वह तो भयभीत है वैसे ही जैसे पहले कैंसर की सूचना से। कैंसर, एड्स अत्यन्त दुखदायी एवं खर्चीले रोग सिद्ध हुए हैं। उसी तरह गुर्दे का प्रत्यारोपण । प्रदूषण के कारण गुर्दे फेल होने के केसों में वृद्धि होती जा रही है। रक्त बैंक, अंग बैंक-ठीक से काम नहीं कर रहे हैं।

इन ज्वलन्त प्रश्नों के सटीक उत्तर चाहिए। इनका उत्तर कौन देगा? केवल विज्ञान लेखक। फीस लेकर नहीं चाहे उसे मुफ्त उत्तर देना होगा-माध्यम जो भी हो-यह जिम्मेदारी उसकी है।

❑❑❑

# अध्याय 7
# उपसंहार

विदेशों में रूसी, अमरीकी, अंग्रेजी लोकप्रिय विज्ञान साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसका लेखन तमाम विशेषज्ञों से कराकर सम्पादन किया गया है। यह अत्यन्त प्रामाणिक सामग्री के रूप में चित्रों से युक्त और प्राय: सिद्धान्तों की विवेचना सहित उपलब्ध कराया जाता है। वहां के शिक्षाविदों का ध्यान ऐंसा साहित्य उपलब्ध कराने की ओर प्रारम्भ से रहा है। हिन्दी में भी वस्तुत: इसी साहित्य की नकल पर या इसी को आधार बनाकर वर्षों से लिखा जाता रहा है—विदेशी आँकड़े भी दिये जाते रहे। जब तक हम पराधीन थे हमें इन आंकड़ों से परहेज नहीं था, हम अमरीकी, रूसी तथा इंग्लिस्तानी आँकड़ों को ही उद्धृत करते रहे। किन्तु देश स्वतन्त्र होने के बाद देशी वैज्ञानिक प्रगति एवं उपलब्धियों के कारण देशी आँकड़े उद्धृत करना आवश्यक हो गया। किन्तु अधिकांश लेखकों को ये आंकड़े उपलब्ध नहीं हो पाते अतएव एक दूसरे की कृतियों से उनको उतार लिया जाता है। यदि कहीं किसी में भूल हुई तो वह भूल उसी तरह चलती जाती है।

हमारे लोकप्रिय लेखकों में एक ही विषय पर अनुकरण के कारण लिखने की आदत पड़ गई है. आप उन सभी पुस्तकों को पढ़ जावें तो आपको कोई नवीनता नहीं मिलेगी।

तब यह सहज प्रश्न उठता है-क्यों नहीं केवल एक पुस्तक सामूहिक रूप से लिखी जाती जिसमें प्रामाणिकतम आदर्श सामग्री हो? क्या लाभ है इतने लेखकों से ? क्या सभी लेखक एक सी ख्याति पाते हैं? क्या किसी एक का नाम गर्व से लिया जाता है? यदि नहीं, तो फिर इतना कचड़ा क्यों?

शिक्षाविदों तथा समाजशास्त्रियों का दायित्व है कि वे प्रामाणिक लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करें, उसे प्रकाशित करने की व्यवस्था करें और फिर स्वस्थ वितरण प्रणाली विकसित करें।

गली-गली में और सस्ती पुस्तकों के रूप में लिखा गया लोकप्रिय साहित्य उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकेगा, जिसके लिए वह अपेक्षित है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति एवं वैज्ञानिक परिवेश की सृष्टि इसका मुख्य उद्देश्य है। यह साहित्य सबों द्वारा पढ़े जाने, समझे जाने और जीवन में उतारे जाने के लिए है-चाहे

वह कवि हो, राजनीतिज्ञ हो, व्यापारी हो, स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या वृद्ध। इसके पढ़े जाने की पहली अनिवार्यता है शिक्षा, साक्षर होना। साक्षरता के बिना ऐसा साहित्य बेकार रहा आवेगा। किन्तु यह दलील दी जा सकती है कि सभी नहीं तो थोड़े ही लोग यदि इससे लाभ उठा सकें तो क्या उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी? क्यों नहीं, अवश्य होगी। किन्तु तब वैज्ञानिक परिवेश धीरे-धीरे बनेगा। तब अधिकाधिक लोकप्रिय साहित्य रचा जा सकेगा जो परिष्कृत रुचियों के लिए होगा और प्रगतिशील जीवन की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए।

पर विज्ञान का क्षेत्र इतना व्यापक है कि दो चार लेखक या दो चार पुस्तकें पर्याप्त नहीं होंगी। हमें कम से कम प्रति वर्ष 100 लेखक चाहिए जो अपनी प्रतिभा का उपयोग करके वर्ष में कम से कम 100 पुस्तकें दें। ये लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ तो हों ही, साथ ही वे भारतीय भाषाओं में सहज, रोचक एवं सरल शैली में लालित्यपूर्ण साहित्य का प्रणयन कर सकें।

क्या इसके लिए सरकारी प्रश्रय चाहिए? हाँ और नहीं-दोनों ही उत्तर होंगे। हां, इसलिए कि पुस्तक लेखन के लिए पुस्तकें जुटानी होती हैं, लेखन सामग्री खरीदनी एवं चित्र आदि तैयार कराने होते हैं। इसके लिए धन चाहिए।

किन्तु लेखक को राज्याश्रय पसन्द नहीं होता। वह किसी सरकारी आदेश की पूर्ति करे यह सम्भव नहीं। वह स्वतन्त्र रूप से लेखन करना चाहेगा, अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता चाहेगा, वह उसका अधिकार है। अत: अच्छा यही हो कि प्रतिष्ठित लेखक को कुछ आर्थिक सहायता प्रारम्भ में सुलभ करा दी जाय और फिर उसकी रचना के प्रकाशन की गारंटी दी जाय। परिश्रम से लिखी गई रचना अप्रकाशित रहे, यह ठीक नहीं। रूस का प्रगति प्रकाशन आदर्श संस्था है किन्तु उसकी कुछ बाध्यताएँ हैं। हमारे देश में भारत का प्रकाशन विभाग तथा चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट ऐसे संस्थान हैं, हिन्दी अकादमियां, एन०सी०ई० आर० टी० भी ऐसी संस्थाएँ हैं जिनसे ऐसी ही आशा की जाती हैं लोकप्रिय साहित्य का प्रणयन नितान्त वैयक्तिक एडवेंचर न बनकर सामूहिक एडवेंचर बने, यही उचित होगा। इसमें विज्ञान संस्थाएँ अच्छी भूमिका अदा कर सकती हैं। उनमें सामूहिक निर्णय लेने, समय के साथ बदलते परिवेश के अनुसार उपयोगी साहित्य का सृजन कराने की क्षमता होनी चाहिए, स्वार्थ/पक्षपात के लिए गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। एक दूरदृष्टि वाली एजेन्सी का काम करना होगा उपकार परक दृष्टिकोण रखना होगा, साथ ही भाषा की समृद्धि को ध्यान में रखना होगा।

अच्छा हो कि लेखकों को तैयार करने का कार्य भी वे करें। ऐसी कक्षाएँ, परिचर्चाएँ एवं गोष्ठियां आयोजित हों, जिनमें इच्छुक लोग भाग ले सकें। पुष्ट

साहित्य सृजन के लिए प्रारम्भिक प्रशिक्षण आवश्यक है। व्यक्तिगत प्रतिभा को छोड़ दें। सामान्यजन के लिए ऐसा करना ही होगा।

अक्सर यह देखा जाता है कि यदि किसी लेखक की 10-20 रचनाएँ एक से अधिक विज्ञान पत्रिकाओं में या साप्ताहिकों में छप जाती हैं तो वह अपने को प्रतिष्ठित मान लेता है। वह इसकी कोई परवाह नहीं करता कि अपने पूर्ववर्ती लेखकों की रचनाओं को पढ़े। इसीलिए सामग्री के स्तर तथा भाषा को प्रवणता पर बड़ा आघात पहुँचता है। इताना ही नहीं, वह किसी प्रमाणित सन्दर्भ ग्रंथ को भी पढ़ने की आवश्यकता नहीं समझता। वह अपने को बहुचर्चित बनाने के ध्येय से समाचारपत्रों में भी लिखता है। परिणाम यह होता है कि उसे गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का अवसर ही नहीं मिल जाता। और पुरस्कार इतने हो गये है कि उसे अपने को विज्ञापित करने का सुअवसर भी मिल जाता है। वह प्राचीन लेखकों की तुलना में अपने को श्रेष्ठ मानने से बाज नहीं आता।

फिर उसमें दिशा-निर्देश का भी अभाव रहता है। उसे जो पसन्द है उसी पर वह लिखता है। आज तक न तो किसी संस्था ने न ही किसी विज्ञान लेखक ने लोकरुचि का सर्वेक्षण किया है। परिणाम यह हुआ है कि एक ही शीर्षक पर एकसाथ सारी पत्रिकाओं में तमाम लेखकों के लेख प्रकाशित होते हैं। समस्या यह है कि इसका उपयोग कौन करे। निम्न कक्षा वाले भी वहीं पढ़ते हैं और उच्च कक्षा वाल भी। ऐसा चर्वित-चर्वण अम्बार लगाकर वैज्ञानिक लेखन के संसार को प्रदूषित करने से क्या लाभ?

आज सभी लेखक पारिश्रमिक पर दृष्टि जमाये रहते हैं। जहाँ पारिश्रमिक मिलता है उसके लिए पहले उच्च कोटि का लेख लिखा जाता है। फिर वह लेख चाहे पढ़ा जाय या नहीं। इस तरह निरुद्देश्य लक्ष्य-संधान होता है- तीर तुक्का दोनों व्यर्थ जाते है।

हिन्दी लेखन के लगभग 100 वर्ष पूरे हो रहे हैं। आत्मकथा, नाटक, कविता या विज्ञान कथाएँ, उपन्यास सभी विधाएँ शायद विज्ञान लेखन के हित में तब तक नहीं होगी जब तक लेखक इन शैलियों में सिद्धहस्त न हो ले। विज्ञान के जिस गद्य की अपेक्षा है-- सुगठित, गम्भीर तथा सार्थक वह कहाँ है? अंग्रेजी अनुवाद में जैसा गद्य प्रयुक्त होता है वह अंग्रेजी शैली का अनुगमन करता है। अनुदित साहित्य को हिन्दी के साहित्य में बदल दें। व्याकरणिक अशुद्धियों कहाँ हैं वह शैलीया वर्तनियों पर कौन ध्यान देता है? क्या अब भी समय वह नहीं आया जब इधर ध्यान दिया जाय कि ऐसा किया जाय?

पारिभाषिक शब्दों की क्लिष्टता अनेक लेखकों को राजमार्ग से हटकर पंगडंडियों पर चलने को वाध्य करती है। किन्तु यह स्पष्ट हो जाना चाहिए

कि स्वीकृत शब्दावली से बँधकर निकला नहीं जा सकता। इधर इस्पात भाषा-भारती, इंस्टीट्यूशन ऑफ इंजीनियर्स तथा भाषा परमाणु अनुसंधान संस्थान से पारिभाषिक शब्दों के जाँच का जो कार्य चालू किया गया है, वह सराहनीय है। वह समय आ गया है जब सभी विषयों की शब्दावलियाँ कसौटी पर परखी जायँ।

और जो लिखा जा चुका है, जो अनुदित साहित्य है उसकी परीक्षा, उसकी आलोचना, उसका अध्यायन-मनन भी उतना ही आवश्यक है। विज्ञान जगत को किसी विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक (मौलिक या अनुवाद) का नाम ज्ञात होना चाहिए। उस पर हमें नाज होना चाहिए।

यदि हमें चाह है कि शोध के क्षेत्र में भी हिन्दी प्रविष्ट हो तो विशिष्ट वैज्ञानिकों को हिन्दी से कतराना नहीं होगा। उन्हें हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना होगा, उन्हें अपनी खोजें हिन्दी में प्रकाशित करनी होंगी। उन्हें प्रफुल्लचन्द्र रे, जगदीश चन्द्र बोस, रामन, नार्लीकर को आदर्श मानकर आगे बढ़ना होगा। शायद कुछ त्याग करना पड़े। अपना दिल खोल कर विद्यार्थियों के समक्ष रखना होगा। बर्ट्रेण्ड रसेल , जेम्स जीन्स, आसिमोव जैसी शैली, उन्हीं जैसी विषयवस्तु प्रस्तुत करनी होगी।

संस्थाओं को महानतम वैज्ञानिकों का प्रश्रय मिलना चाहिए। वे आदर्श बनें आने वाली पीढ़ी के। वे अपनी कार्यप्रणाली से लोगों को परिचित करावें। अवैतनिक कार्य करें, विदेश जाने की तुलना में देश में ही अपना प्रकाश फैलावें, जो विदेश घूम आये हैं, बाहर के वातावरण का विवरण प्रस्तुत करें।

जो जिस विषय का विशेषज्ञ है वे अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना का हिन्दी में अवश्य छपायें (अनुवाद ही नहीं) । यदि उन्हें पुस्तकों को पुरस्कृत करने के लिए निर्णायक चुना जाय तो वे उसे दायित्व समझ कर श्रेष्ठतम कृति को ही पुरस्कृत कर किसी के प्रति पक्षपात न हो।

हिन्दी कार्य करने वाली संस्थाएँ सरकारी सहायता लें किन्तु जनता से भी सहयोग मागें, भारत की जनता मूक दर्शक न बनी रहे। वह लेखकों से माँग करे, अपने बच्चों के लिए अपने लिए, और भावी पीढ़ियों के लिए सत्साहित्य की।

यदि विश्वविद्यालय के प्रोफेसर उच्चस्तरीय वैज्ञानिक साहित्य का सृजन नहीं करेंगे तो कौन करेगा? वे उतने ही श्रम से हिन्दी पुस्तक तैयार करें जितने श्रम से रॉयल सोसायटी के लिए कोई समीक्षा तैयार करते हैं। वे द्वैतवाद न

बरतें। विद्यार्थीगण उच्चकोटि का साहित्य पढ़ने के लिए बाध्य किये जायँ। समस्त प्रचलित पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा हो और अच्छी पुस्तक ही खरीदी जाय।

विषयों का पिष्टपेषण न हो, इसके लिए कुछ संस्थाएँ 'सारांश' जैसी कुछ व्यवस्था करें।

हिन्दी का लेखक अन्य भारतीय भाषाओं में जो लिखा जा रहा है उससे भी परिचित हो। वह दो एक भारतीय भाषाओं का भी अध्ययन करे। हृदयंगम करने के बाद अन्तरभाषाई अनुवाद को हाथ में अवश्य ले।

# परिशिष्ट

## हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन का संक्षिप्त इतिहास

प्राचीन काल से ही हमारे देश में ज्ञान-विज्ञान अपनी चरम सीमा पर रहा है। इसका प्रमाण हमारी सांस्कृतिक वैज्ञानिक धरोहर है। आधुनिक काल में भी हमारा देश विज्ञान लोप्रियकरण में पीछे नहीं रहा। कतिपय निष्ठावान व्यक्तियो ने अपने सीमित साधनों और प्रयासों से विज्ञान लोकप्रियकरण कार्य के लिए अपना पूरा-पूरा जीवन अर्पित कर दिया। इसका लेखा जोखा प्रासंसिक होगा।

श्री हरगूलाल ने 1857 के आस पास विज्ञान और स्कूली वैज्ञानिक उपकरणों के निर्माण और प्रचार प्रसार के क्षेत्र में कार्य किया जिसकी ओर अभी तक लोगों का ध्यान नहीं गया था। ये अम्बाला के शिक्षक थे। बच्चों के विज्ञान पढ़ाते समय उन्हें लगा कि विज्ञान की पढ़ाई के साथ-साथ यदि विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रयोगों के माध्यम से समझाया जाय तो बच्चे आसानी से समझ सकते हैं। फलतः उन्होंने चुम्बक, प्रकाश आदि से सम्बन्धित उपकरण बनाये और ये उपकरण आस-पास के क्षेत्रों में वितरित करने लगे। रंगीन पोस्टर भी उन्होनें बनाये। आज भी अम्बाला वैज्ञानिक उपकरणों के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है।

किन्तु हिन्दी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन की शुरुआत भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा बनारस से उन्हीं के द्वारा संपादित एवं प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका 'कवि वचन सुधा' के 30 अप्रैल 1877 अंक से हुई। इसमें उन्होंने रुड़की की जल चक्की, पवन चक्की तथा गंगा लहर का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया।

भारतेन्दु बाबू के ही प्रोत्साहन से बनारस से सन् 1882 में लक्ष्मीशंकर मिश्र ने 'काशी पत्रिका' निकाली जिसमें वर्षों तक हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर सामग्री छपती रही । श्री मिश्र ने लोकप्रिय विज्ञान पर पुस्तकें भी लिखी। 1902 कांगड़ी में गुरुकुल विद्यालय की स्थापना के बाद हिन्दी में विज्ञान शिक्षण के लिए महेशचरण सिन्हा ने रसायन शास्त्र, विद्युतशास्त्र तथा वनस्पति शास्त्र पर पुस्तकें लिखीं। 1901 में इलाहाबाद से सरस्वती पत्रिका छपनी शुरू हुई तो पहले बाबू श्यामसुन्दर दास ने तथा उनके बाद पं० महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने इस पत्रिका में लोकोपयोगी वैज्ञानिक निबन्धों को लगातार स्थान दिया। इतना ही नहीं, द्विवेदी जीने वैचित्र चित्रण, विज्ञानचर्चा तथा औद्योगिकी जैसी लोकप्रिय विज्ञान की पुस्तकें भी लिखीं।

1913 में प्रयाग में **विज्ञान परिषद** की स्थापना हो जाने के बाद 1915 से एक मासिक पत्रिका 'विज्ञान' छापने लगी तो विज्ञान लेखन के लिए सुदृढ़ मंच तैयार हुआ। फलस्वरूप अनेक लोकप्रिय विज्ञान पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं।

1928 के बाद प्रयाग स्थित **हिन्दुस्तानी एकेडमी** ने भी विज्ञान के लोकप्रियकरण में हाथ बँटाया किन्तु सबसे महत्वपूर्ण कार्य **नागरी प्रचारिणी सभा** काशी द्वारा पारिभाषिक कोश तैयार कराकर सम्पन्न किया गया। लेखकों को उपयुक्त शब्दों की तलाश करते समय काफी सहायता मिली।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक विज्ञान लोकप्रियकरण वस्तुतः व्यक्तिनिष्ठ रहा। इसमें पं सुधाकर द्विवेदी, रामदास गौड़, गोपाल स्वरूप भार्गव, डा० गोरख प्रसाद, महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, स्वामी हरिशरणा नन्द, डॉ० आत्माराम, डॉ० नन्दलाल सिंह , डॉ० सत्यप्रकाश, डॉ० निहाल करण सेठी, श्री जगपति चतुर्वेदी उल्लेखनीय हैं।

1950 के बाद 1970 तक सुरेशसिंह, रामेश वेदी आदि ने प्रचुर मात्रा में लोकोपयोगी साहित्य की रचना की। 1971 के बाद पर्यावरण चेतना, सूचना क्रान्ति, अन्तरिक्ष यात्राएं, जैव प्रोद्यगिकी जैसे नये-नये विषयों पर आवश्यकतानुसार लोकप्रिय विज्ञान साहित्य का सृजन हुआ। इस काल खण्ड में (वर्तमानकाल) नई पीढ़ी के अनेक होनहार लेखक सम्मिलित हैं। इस काल में न केवल निबन्ध लिखे गये अपितु विज्ञान कथा तथा विज्ञान कविता जैसी नवीन विधाओं पर रचनाएँ की गईं।

हिन्दी में विज्ञान के अतिरिक्त विज्ञान प्रगति, आविष्कार, आपका स्वास्थ्य, खेती, किसान भारती जैसी वैज्ञानिक मासिक पत्रिकाएँ अनवरत प्रकाशित हो रही हैं। सम्प्रति हिन्दी में विज्ञान विषेयक लगभग 7000 पुस्तकें प्रकाशित हैं जिनके लेखकों की संख्या 3000 से ऊपर होगी जिसमें 150 महिलाएँ भी हैं। इन लेखकों में से लगभग 600 लेखकों की एक से अधिक पुस्तकें हैं और किसी एक लेखक द्वारा लिखित पुस्तकों की अधिकतम संख्या 85 है। प्रायः 160 लेखक 1965 से लगातार लिखते रहे हैं। इनमें से कुछ दिवंगत हो चुके हैं किन्तु उनके द्वारा स्थापित परम्परा पूर्ववत् चल रही है।

इस काल में महत्वपूर्ण पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। आश्चर्य होगा सुन कर कि 3000 लेखकों में लगभग 300 अनुवादक भी हैं। कुछ श्रेष्ठ अनुवादकों में डॉ० गोरख प्रसाद, डॉ० व्रजमोहन, डॉ० निहाल करण सेठी, श्री रामचन्द्र तिवारी, श्री हरिशरण सिंह बिश्नोई, प्रो० भगवती प्रसद श्रीवास्तव, श्रीमती अनन्त लक्ष्मी अम्माल हैं।

सम्प्रति लोकप्रिय विज्ञान के लेखन के क्षेत्र में जो लेखक जुटे हैं उनमें गुणाकर मुले, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, रामेश वेदी, प्रेमानन्द चन्दोला, डॉ० रमेश दत्त शर्मा, देवेन्द्र मेवाड़ी, प्रमोद जोशी, हरीश अग्रवाल, सुभाष लखेड़ा , श्याम सुन्दर शर्मा, तुरशनपाल पाठक, डॉ० विष्णुदत्त शर्मा, श्री मनोज पटेरिया, विनीता सिंघल, रमेश सीमवंशी, डा० श्रवण कुमार, डॉ० रमा कान्त पाण्डेय डॉ० अरविन्द मिश्र, शुकदेवप्रसाद, डॉ० दिनेश मणि, श्री डी. एन. भटनागर श्री प्रेमचन्द श्रीवास्तव, विजय जी, दर्शनानन्द, जगदीप सर्वसेना, विजय कुमार उपाध्याय, राजेन्द्र कुमार राय, डॉ० हेम चन्द्र जोशी, डॉ० पी० के० मुखर्जी, सुरेश आमेटा, श्यामसुन्दर पुरोहित, डॉ० सतीश चन्द्र शर्मा, सुशीला राय, डॉ० डी. डी. ओझा, डॉ० चन्द्र मोहन नौटियाल, डॉ० अरुण आर्य, रामचन्द्र मिश्र मुख्य हैं।

किन्तु यह सूची पूर्ण नहीं है। इसमें उन तमाम लेखकों के नाम सम्मिलित किये जा सकते हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में मौन भाव से लोकप्रिय विज्ञान लेखन में संलग्न हैं और आगे चल कर प्रसिद्धि पावेंगे। इधर बाल विज्ञान लेखन में काफी प्रगति हुई है और सुन्दर-सुन्दर कृतियाँ प्रकाश में आई हैं।

अब विज्ञान लेखन को प्रतिष्ठित कार्य माना जाने लगा है। अव लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए ऐसे कई पुरस्कार एवं सम्मान हैं जो वर्षानुवर्ष विज्ञान लेखको को मिलते रहते हैं।

**टिप्पणी**—यहाँ पर केवल हिन्दी के विज्ञान लेखकों का नाम लिया गया है। मराठी, बंगला, गुजराती, मलयाली, कन्नड़, तेलगू में भी उच्चकोटि का विज्ञान लेखन होता आया है।